TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY

OU_182014

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.1/M49M Accession No. G.H.1477

Author मीराँबाई।

Title मीराँ की प्रेम-वाणी।1941

This book should be returned on or b
last marked below.

मीराँकी प्रेम-वाणी

सम्पादक—

पण्डित रामलोचन शर्मा 'कण्टक' एम० ए०
प्रोफ़ेसर बङ्गवासी-कालेज कलकत्ता

बम्बई पुस्तक एजेन्सी,
दरीबाकलाँ,
देहली

अप्रैल १९४१ : द्वितीय संस्करण १०००

मूल्य

१।॥)

Checked 1969

Checked 1965

प्रकाशक,
बम्बई पुस्तक एजेन्सी,
दरीबाकलाँ, दिल्ली

मुद्रक,
एम० एन० ठुकल,
फेडरल ट्रेड प्रेस, दिल्ली

उत्सर्ग

'माँ के चरणों में'

मीराँकी प्रेम-वाणी

सदृरिस गोपिन प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायो ।
निरअंकुस अति निडर रसिक जन रसना गायो ॥
दुष्टन दोष बिचारि मृत्यु को उद्यम कीयो ।
बार न बाँको भयो, गरल अमृत ज्यों पियो ॥
भक्ति-निसान बजाय कैं, काहू तें नाहीं लजी ।
लोक-लाज-कुल-शृङ्खला तजि मीरा गिरिधर भजी ॥

—नाभादास

—कण्टक

अनुवचन

दिसम्बर १९३४ में 'हिन्दी क्लब कलकत्ता, की स्थापना हुई। क्लब की ओरसे आग्रह हुआ कि मैं मीराँकी रचना पर कोई निबन्ध पढ़ूं। संस्था के आग्रह को मैंने सानन्द स्वीकार कर लिया। 'परिचय' का मुख्यांश इसी उद्देश्य से लिखा गया और क्लब में पढ़ा गया। पूज्यवर महामहोपाध्याय पं० सकलनारायण शर्मा और श्रद्धेय पं० बबुआजी मिश्र ने निबन्ध को बहुत ही पसन्द किया। उनके प्रोत्साहन तथा प्रोफेसर ललताप्रसाद सुकुल, पं० विष्णुदत्त जी शुक्ल, बाबू रघुनाथप्रसाद सिंहानियां, आदि मित्रवरों के आग्रह से 'परिचय' को वर्तमान रूप मिला। इसी रूपमें यह 'राजस्थान' के प्रथम अङ्क में छपा। सुना, लोगों को वह अच्छा जंचा। पं० उमादत्त जी शर्मा के अनुरोध से बम्बई पुस्तक एजन्सी के मालिक ने पुस्तकाकार में उसे प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। जैसे-तैसे मीरां के पदों का संग्रह किया गया। जो पद जिस रूप में मिला वह उसी रूप में रख लिया गया। पदों का सम्पादन नहीं किया गया। पाठक इसे मेरी अलपज्ञता या उदासीनता समझ सकते हैं, किन्तु मैंने जानबूझ कर किया है, क्यों कि जब तक मीरां के पदों की कोई हस्तलिपि प्रति नहीं मिल जाती तब तक पदों की पाठशुद्धि या उनका सम्पादन करना मेरे मत से अनुचित है। अन्त में जो शब्दार्थ-दीपिका दी गई है उसमें परम्परागत रूढ़ियों का पूर्ण पृष्टपोषण नहीं हुआ है। कारण, मीरां के पदों में साहित्य-शास्त्र का निदर्शन नहीं, भाव-प्रवणता का अभि-

व्यञ्जन है। अतएव भाव-पक्षपर ही प्रकाश डालने का मैंने प्रयास किया है। मुझे अपने प्रयास में कितनी सफलता मिली है यह तो अभी नहीं कहा जा सकता, किन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि मीरां के पदों की माधुरी चखने में इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिलेगी।

उपर्युक्त महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हुए मैं अपने स्नेह भाजन दुर्गाप्रसाददास की शुभ कामना किये बिना नहीं रह सकता, जिसने मेरी अस्वस्थता की दशा में श्रुतिलिपिकारका कार्य सुचारु रूप से सम्पादित किया है।

चन्द्र चतुर्थी सं० १९९३ वि०] —सम्पादक

*

परिचय

हमारे देशमें एक प्रथा प्रचलित है, वह यह कि स्त्रियां विशेष त्योहारों और तिथियोंके अवसर पर नदी-स्त्रोतों में दीपक जलाकर छोड़ दिया करती हैं। वे दीपक धारा के सहारे बहते-बहते बहुत दूर तक पहुँच जाते हैं। इतिहासके पृष्ठोंका अवलोकन करने परभी हमें इस प्रकार की परिपाटी देखनेको मिलती है। भारतके काल-प्रवाहमें इस प्रकारके अनेक दीपक किसी नैसर्गिक शक्तिके द्वारा छोड़े गये और वे युग-युगान्तरको पार करते हुए आज भी दैदीप्यमान दिखाई पड़ रहे हैं।

अनन्तकालमें परमात्माके वियोगानुभवसे व्याकुल होकर जीवात्माने उसकी प्राप्तिके लिये उद्योग करना आरम्भ कर दिया। उस अनुष्ठानकी धारा बहुमुखी थी। तर्क-वितर्क और ज्ञान-विज्ञानके सहारे उसका परिचय और पता पानेका प्रयास प्रारम्भ हुआ। कर्तव्य करते हुए कर्मयोगी उसकी ओर उन्मुख होने लगे। इन दोनों दलोंके साथ एक तीसरा दल भी था जो आत्मविस्मृति और आत्मसमर्पणके द्वारा अपने इष्टकी सहानुभूतिको आमन्त्रित करने लगा। पहले दो दलों की साधना शुष्क, एकान्त और वैयक्तिक कही जा सकती है, अतएव वह अधिक लोकप्रिय न हुई। कालकी गतिके साथ-साथ उसकी गति क्रमशः धीमी पड़ती गई। इधर

तीसरे दलकी साधना सरस, सार्वजनिक और व्यावहारिक थी, सुतराम् उस साधनाकी धारा जो आरंभमें परिमित सीमामें आबद्ध थी, चलकर समधरातल पा सहायक और शाखा-नदियोंके साथ चारों ओर फैल गई ।

सारांश यह कि भारतीय साधकोंकी साधना अतीत कालसे ही अध्यात्मलाभकी ओर उन्मुखी रही है । कोई दर्शन के गहन तत्वज्ञान को आश्रय मानकर इष्ट-सिद्धिमें संलग्न हुआ और कोई काव्य और संगीत को अपनाकर । पहली साधना प्रज्ञात्मिका कही जा सकती है जो उपनिषद्, वेदान्त आदिमें अविलुप्त है । दूसरी रागात्मिका जो भावुक कवियोंकी कविताओं और तपोनिष्ठ गायकोंके गानोंमें स्पंद्यमाना हो विराजती है तथा कल-कल निनादिनी पुण्यतोया मन्दाकिनीके समान पाठकों और श्रोताओंके हृदय-क्षेत्रको परिप्लावित करती है ।

मीरांबाई इसी दूसरी कोटिकी साधिकाओंमें थी । उसका नाम जनसमुदायके हृत्पट पर जो एक बार अङ्कित हुआ वह ज्यों का त्यों उसी अम्लान रूपमें आजभी जगमगाता दिखाई दे रहा है ।

राजपूतानेके इतिहासमें मारवाड़की गौरव-गाथा एक विशेष स्थान रखती है, उसमें भी जोधपुर का महत्व और किसी स्थानसे कम नहीं । इस पुण्य-नगरीके संस्थापक राठौर-वंशीय राव जोधा जी के चतुर्थ पुत्र राव दूदाजीने अपने प्रभूत पराक्रमके प्रभावसे मेड़तेके एक पृथक् राज्यकी स्थापना की थी । इन्हीसे राठौर-वंशकी मेड़तिया शाखाका प्रारम्भ हुआ । इन्होंने अपने चतुर्थ

पुत्र रतनसिंहको कुड़की, बाजोली आदि १२ गाँवोंकी जागीर प्रदान की थी। रतनसिंहके कोई पुत्र न था, एक कन्या थी जिसका नाम मीराँ था। मीराँ अपने पिताके घरकी एकमात्र जोत थी उसके माँ-बाप उसे अपने आँखोंकी जोत समझते थे। उस समय कौन जानता था कि वह आगे चल कर मोहमायाके निविड़ तममें पड़े हुए मनुष्य-मात्रको ज्ञान और भक्तिकी विमल ज्योति प्रदान करनेवाली होगी। घरकी जोत आकाशकी चांदनी बनकर चारों ओर रस बिखेरेगी। माँ-बापकी आँखोंकी पुतली राजस्थान नहीं, निखिल भारत की प्रेम-देवी होकर परम पूजनिया बनेगी।

मीराँके जन्म, विवाह और मृत्यु आदि घटनाओंके सम्बन्धमें मतभेद है। इतिहास से जहाँ तक पता लगा है वहां तक हम कह सकते हैं कि वि० सं० १५५५ यानी १४९९ ई० में कुड़की ग्राममें मीराँ का जन्म हुआ था। बचपन ही में उसकी माताका देहान्त हो गया। उसके पितामह दूदाजी उसे कुड़की से मेड़ता ले आये और वहीं उसका लालन-पालन हुआ। दूदाजी परम वैष्णव थे, अतएव बचपनसे ही मीराँके हृदयमें वैष्णव-धर्मका बीजारोपण हो गया। वही आगे चलकर भगवद्भक्तिके रूपमें प्रस्फुटित हुआ सं०१५७२ में दूदाजीका गोलोकवास हुआ। उनके उपरान्त उनके ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेवजी राजगद्दी पर बैठे। राजगद्दीपर बैठनेके एक ही वर्ष बाद सीसोदिया राजवंशके महाराणा सांगाजीके ज्येष्ठ पुत्र भोजराजके साथ मीराँका उन्होंने विवाह कर दिया। विवाहके बाद मीराँअपने स्वामीके साथ चित्तौड़ गई। कुछही वर्ष बाद अनुमानत

१५१६ और १५२४ ई० के बीच युवराज भोजराजका देहान्त हो गया। १५२८ ई० में महाराणा साँगाका भी देहान्त हो गया। उनके बाद मीराँके देवर रतनसिंहजी मेवाड़के महाराणा हुए। वे चार वर्ष भी शासन न कर सके थे कि उनका भी देहावसान हो गया। उनके बाद उनके सौतेले भाई महाराणा विक्रम गद्दीपर बैठे।

बाल्यकालसे ही मीराँमें भगद्वभक्तिके लक्षण प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लग गये थे। वह अपनी सहचरियोंके साथ बहुधा भगवान श्रीकृष्णकी मूर्ति बना कर उसकी पूजा किया करती थी। घरौंदे और गुड़ियाके बदले कृष्णकीमूर्ति बनाना उसका स्वाभाविक खेल था। एक समय की बात है कि वह अपनी माँ के साथ किसी विवाहोत्सवमें गई। विवाह सम्पादित होनेके उपरान्त कुतुहलवश मीराँने अपनी माँ से पूछा,—"माँ मेरे स्वामी कौन हैं?" हँसते हुए माँ ने उत्तर दिया 'गिरधारीलाल'।

उस समय माताके इस कथनका अभिप्राय वह नहीं समझ सकती थी। तथापि उसी समयसे वह श्रीकृष्णका पति-भावसे भजन करने लगी। बचपनमें जो विचार हृदयमें जड़ जमा लेता है, वह जीवनका साथी हो जाता है। कृष्णके प्रति मीराँका अनुरागउसके जीवनका एकान्त सहचर रहा। उसने कृष्णको पति-रूप में वरण किया और उससे निकटतम सम्बन्ध स्थापित करनेको वह एक-रससे तत्पर रही जब तक इस उद्देश्यमें सफलता नहीं मिली, तब तक उसे शान्ति नहीं थी और जब सफलता मल गई तब वह इस लोककी रह ही नहीं गई।

मीराँ श्रीकृष्णकी मूर्ति रखकर पूजा करने लगी। एक समय कीबात है कि मीराँके घर एक साधु आये मीराँने साधुसे पूछा कि तुम किस मूर्तिकी पूजा करते हो ? साधुने उत्तर दिया कि 'गिरधरलाल'की। मीराँने अपनी मूर्ति फेंककर साधुसे कहा, मैं तुम्हारी मूर्ति लूगीं। साधु देनेसे इनकार कर गया। मीराँ बालहठसे तनिक भी न डिगी। उसने दो दिनों तक खाना-पीना छोड़ दिया। उसके अनशन से प्रभावित होकर उसके माता-पिताने साधुको धन द्वारा सन्तुष्ट कर अपनी इकलौती बेटीके लिये 'गिरधारी लाल' की प्रतिमा माँगी। किन्तु साधुने न दी। साधु जब दूसरी जगह चला गया तब उसने एक रातको सपनेमें देखा कि गिरधारीलाल उसे कह रहे हैं—'यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो मुझे उस कन्याके पास पहुँचा दो।' दूसरे दिन साधुने वह प्रतिमा मीराँके पिताको दे दी। उसी समयसे मीराँ और भी लगनके साथ 'गिरधरलाल'की सेवामें तत्पर हुइ और उसे स्वामी-भावसे पूजने लगी। मीराँके अधिकाँश भजनोंके अन्तमें 'मीराँके प्रभु गिरधर नागर' 'मेरे तो' गिरधर गोपाल' 'मीराँ पति गिरधारी' 'गिरधरजी भरतार' आदि पद जो देखे जाते हैं, वे उसकी स्वाभाविक-पूर्ण भक्तिके परिचायक हैं।

भोजराजके साथ विवाह होनेपर भी मीराँके हृदयमें यही धारणा जमी रही कि उसके वास्तविक पति 'गिरधारीलाल' ही हैं। विधवा होनेपर मीराँको कदाचित इसीलिये अधिक शोक न हुआ। पतिकी मृत्युके उपरान्त तो उसकी भक्ति-भावना और भी वर्द्ध-

माना हुई। अपने धैर्यके प्रभावसे उसने वैधव्य-शोकका दमन कर अपने आपको श्रीकृष्णकी आराधनामें लगा दिया। इसी समय उसने साधु रैदाससे दीक्षा ग्रहण की। उनसे 'स्वरूप-साधन-प्रणाली' का ज्ञान प्राप्त कर उनके उपदेशानुसार 'दिन दूने रात चौगुने' उत्साहके साथ साधन-भजनमें समय बिताने लगी।

किसी किसीका मत है कि रैदास मीराँके गुरु न थे किन्तु मीराँके भजनोंसे पता लगता है कि रैदास उसके गुरु अवश्य थे। यदि गुरु न थे तो कमसे कम मीराँके हृदय में रैदासके प्रति वही श्रद्धा थी जो एक आज्ञाकारी शिष्यके हृदयमें गुरुके प्रति होनी चाहिये।

'गुरु मिलिया रैदासजी, दीनी ज्ञान की गुटकी।'
'मीरां ने गोविन्द मिल्याजी, गुरु मिलिया रैदास।'
'रैदास सन्त मिले सत्गुरु।'

स्वामी भूमानन्दने हालमें 'बंगश्री' में एक निबन्ध 'मीराँबाई' पर लिखा है जिसमें वे लिखते हैं 'वास्तवमें रैदास मीराँके गुरु थे। इसमें किसी प्रकारके संन्देह की गुंजायश नहीं।' स्वामीजी का कथन हमारे उपर्युक्त कथनका समर्थक है।

श्री प्रभासचन्द्र दे अपने 'जयदेव' ग्रन्थमें लिखते हैं—'कहा गया है कि राणा कुम्भकी पत्नी मीराँबाईने सनातन गोस्वामीसे वृन्दाबनमें दीक्षा ग्रहण की।' ऐतिहासिक गवेषणासे यह स्पष्ट है कि मीराँबाई और सनातन गोस्वामी समकालीन न थे। इसके

अतिरिक्त वृन्दाबनकी यात्राके बहुत पहले ही मीराँने भगवद्दर्शन भी प्राप्त कर लिया था।

मेरा अनुमान है कि जब तक मीराँ के जीवन-काल का ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो जाता, तब तक ऊपर के अनुमान अन्धेरे में दीपक टटोलने के बराबर हैं। अभी इतना ही कहकर मैं संतोष करूंगा कि मीराँ रैदासकी या रैदासपंथी किसी साधुकी शिष्या थी।

गुरु से उपदेश प्राप्त कर मीराँ भगवद्भजन में इस प्रकार लग गई कि उसे संसार से वैराग्य-सा हो गया। श्रीकृष्ण की भक्ति और पूजा ही उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य रह गई। आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ उसका नाम चारों ओर फैलने लगा। उससे अनेक साधु-संत मिलने को आते थे और धर्मालाप कर अपने को धन्य समझते थे।

महाराणा विक्रम राजमहिषी के इस आचरण से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने मीराँ से साधुओं की संगत से दूर रहने का अनुरोध किया किन्तु मीराँ पर उनके अनुरोध का कुछभी प्रभाव नहीं पड़ा। इसी बात का वर्णन स्वयं मीराँ ने अपने भजन में भी किया है:—

राणाजी हूँ अबन रहूँगी तोरी हटकी।
साध संग मोही प्यारो लागै, लाज गई घूंघट की॥
पीहर मेड़ता छोड़ा अपना, सुरत निरत दोउ चटकी।
सतगुरु मुकुर दिखाया घर का, नाचूंगी दे देचुटकी॥
हार सिंगार सभी ल्यो अपना, चूड़ी करकी पटकी।

मेरा सुहाग अब मोकूं दरसा, और न जाने घट की॥
महल किला राणा मोंहिं न चाये, सारी रेशम पटकी।
हुई दीवानी मीराँ डोले, केश लटा सब छिटकी॥

राणाजी, अब तुम्हारे बरजे मैं न मानूंगी। साधुओं की संगत मुझे प्यारी है। घूंघट की लाज तो कब की चली गई। मैंने अपने मेड़ते को छोड़ दिया। भगवान् की याद मैंने दिल में कर ली है। उसमें रत रहना मेरा जीवन है। सद्गुरुने आत्मा के दर्पण में परमात्मा के रूप को दिखा दिया है। अब मैं उसके प्रेम में विभोर—सी हो गई हूं। दुनियाँ की मुझे परवाह नहीं है चुटकी देकर मैं नाचूंगी-परमात्मा के भजन गाऊंगी और अपने को धन्य समझूंगी। तुम अपना हार शृंगार सबले लो। हाथकी चूड़ी मैं पटके देती हूं। मैं दुनियां की बात नहीं जानती। मेरे घट की बात भी दूसरा नहीं जानता। मेरा सुहाग मुझे दिखाई देरहा है मुझे महल और मकान न चाहिये। रेशमी साड़ी की मुझे जरूरत नहीं। मैं तो अपने गिरिधर की दीवानी हूं और इसलिये मेरे बालों की लटें यों बिखरी पड़ी हैं।

इस पर विवश हो कर राणा ने चम्पा और चमेली नाम की दो सहकारियों को मीराँ की देख रेख करने को नियुक्त किया और उन्हें कह दिया कि देखना, मीराँ साधु-संन्यासियों के साथ बात न करे इसका प्रयास करना। मीराँ को समझा-बुझाकर मेरे मत में लाना। चम्पा और चमेली ने मीराँ को समझाया-बुझाया, अपने

भरसक राणाके मतमें लानेका प्रयास किया, पर उनका सारा परिश्रम व्यर्थ गया। अन्त में सहचरियों ने यहां तक कहा कि आप राजकुमारी हैं, राजमहिषी हैं, आपका साधारण लोगों के साथ मिलना-जुलना अनुचित है। इससे कुल की मर्यादा नष्ट होती है। किन्तु, तपस्विनी प्रेममयी मीराँने उत्तर दिया मेरा मन गिरिधारीलालमें लीन है। मैं अपना सर्वस्व गिरिधारीलालको अर्पण कर चुकी हूँ। मेरा न तो अब राजत्व है और न कुल-मर्यादा।

सखी री, मैं तो गिरिधर के रँग राती।

पीहर बसूं न बसूँ सास-घर, सतगुरु शब्द सँगाती।

ना घर मेरा ना घर तेरा, मीराँ हरि-रँगराती॥

सखी, मैं तो गिरिधरके रङ्गमें रँग चुकी हूँ। न तो पिताके घरमें मेरा बास है न सासके घर, सद्गुरुके शब्द ही मेरे एकमात्र संगी-सखा हैं। यह घर न तो मेरा है न तेरा है। यह उसका है जो परमात्माके रँगमें रँग गया है।

राणाके आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब उन्होंने सुनाकि चम्पा चमेली मीराँको सुधारनेके बदले खुद उसके रंगमें रँग गईं। भला पारसके स्पर्शसे लोहा कब तक लोहा बना रह सकता है? उसे सोना होना ही होगा। चम्पा-चमेली भी मीराँके संग 'गिरधर हाथ बिकानी' हो गईं। अब वे मीराँके भजनमें सहायता देने लग गईं। साधुओं का समाज जुटाना शुरू कर दिया। इससे चित्तौड़में चारों ओर मीराँके सम्बन्धमें अनेक जनश्रुतियाँ फैलने लगी। राणा

को इससे बड़ा ही क्षोभ हुआ। उन्होने मीराँको विष देकर या अन्य किसी प्रकारसे मार डालने का संकल्प-सा कर लिया।

राणाकी बहिन ऊदांबाई उनके संकल्पको भांप गई। उसने राणासे अनुनय-विनय की और मीराँको सुधारनेका बीड़ा अपने ऊपर लिया। उसने मीराँसे कहा 'भाभी, तुम्हारे वर्तमान आचरण के कारण राणा और राजपरिवारकी चारों ओर निन्दा हो रही है तुम्हारा व्यवहार राजकुलोचित होना चाहिये।' मीराँ और ऊदाँ-बाई के बीच जो बातें हुई वह उनके ही शब्दोंमें सुन लीजिये:—

भाभी मीराँ कुलने लगाई गाल,
ईडरगढ़ का आया ओलमा।
बाई ऊदाँ थारे म्हारे नातो नाहीं,
बासो बस्यां का आयाजी ओलमा॥
भाभी मीरां साधाँ को संग निवार,
सारो शहर थारी निन्दा करै।
बाई उदां करे तो पड़्या झख मारो,
मन लाग्यो रमता राम सूं॥
भाभी मीराँ पहरोनी मोत्यां का हार,
गहणो पहरो रतन जड़ाव को।
बाई उदां छोड़्यो मैं मोत्याँ का हार,
गहणो तो पहरयो शील सन्तोष को॥

भाभी मीराँ औरां के आवेजी आछी रूड़ी जान,
थारे आवे छै हरिजन पावणा ।
बाई उदां चढ़ चौबारा झाँक,
साधाँ को मण्डल लागै सुहावणो ॥
भाभी मीरां लाज़ै लाजै गढ़ चीत्तौड़,
राणोजी लाजै गढ़रा राजवी ।
बाई उदां तारचो तारचो चीत्तौड़,
राणाजी तारचा गढ़रा राजवी ॥
भाभी मीराँ लाजै थारा मायड़ बाप,
पीहर लाजैजी थारो मेड़तो ॥
भाभी मीराँ राणाजी कियो छै थांपर कोप,
रतन-कचोले विष घोलियो ।
बाई उदाँ घोल्यो तो घोलण द्यो,
कर चरणामृत वोही म्हे पीवस्याँ ॥
भाभी मीराँ देखतड़ां ही मर जाय,
यो विष कहिये बासक नाग को ।
बाई ऊदाँ नहीं म्हारे माय न बाप,
अमर डाली धरती झेलिया ॥

भाभी मीरां राणाजी ऊभा छै थारे द्वार,

पोथी माँगे छै थारा ज्ञान की।

बाई ऊदां पोथी म्हारी खांडाकी धार,

ज्ञान—निभाव राणो है नहीं॥

भाभी मीरा राणाजी रो बचन न लोप,

उन रुठ्यां भीड़ी कोउ नहीं।

बाई ऊदाँ रमापति आवे म्हारे भीड़,

अरज करू छं तासूं बीनती॥

'मीरां भाभी, तूने कुलमें कलंक लगा दिया। ईडरगढ़से भी (ऊदांबाईके ससुरालसे) ऐसा उलाहना आया है।

'उदाँबाई, मेरा तेरा नाता क्या? तेरे घर आकर रही, इसी से उलाहना मिला।

'मीराँ भाभी तू साधुओंकी संगत छोड़ दे। सारे शहरमें तेरी निन्दा हो रही है।

'ऊदाँबाई, उन्हे निन्दा करने दे? मुझे इसकी क्या पड़ी है? मेरा नाम तो इन रमनेवाले साधुओं (रमता राम) में रम गया है।

'मीराँ भाभी, मोतीके हार पहन, रत्न-जटित आभूषण धारण कर।

'ऊदांबाई, मैंने मोतीके हार उतार दिये हैं। शील और सन्तोषके गहने मेरे सिंगार हैं।

'मीराँ भाभी, औरोंके यहाँ अच्छी-अच्छी बरातें आती हैं, मगर तेरे यहाँ ये 'हरिजन' ही पाहुने आते हैं।

'ऊदांबाई, महल पर चढ़ कर देख, साधुओं का जमघट कितना सुहावना मालूम पड़ता है।

'मीराँ भाभी, तेरे कारण चित्तोड़का गढ़ लज्जित हो रहा है। गढ़ाधीश राणाका सिर लज्जासे नत है!

'ऊदांबाई, मैंने चित्तौड़को तार दिया है। गढ़पति राणाजीके उद्धारका द्वार मैंने खोल दिया है।

'मीराँ भाभी, तेरे कारण तेरे माँ-बाप भी लज्जित हो रहे हैं। तेरा नैहर 'मेड़ता' कलङ्कित हो रहा है।

'ऊदांबाई, मैंने माँ बापको भी धन्य कर दिया है। मेरा नैहर मेड़ता भी मेरे कारण धन्य हो गया है।

'मीराँबाई, राणाजी तुझ पर क्रुद्ध हैं। उन्होंने रतन-कटोरेमें बिष घोल रखा है।

'ऊदांबाई, राणाने अगर विष घोल रखा है तो रखने दे। मैं उसे चरणामृत समझ कर पी जाऊंगी।

'मीराँ भाभी, वह विष साधारण नहीं है। उसे बासुकि नागका विष समझ, जिसके दर्शन-मात्रसे ही प्राण-पखेरू उड़ जायँगे।

'ऊदांबाई, मेरे कोई मां-बाप नहीं है। मैं आकाशसे छोड़ दी गई, धरतीने मुझे लोक लिया।

'मीराँ भाभी, राणाजी तेरे द्वार पर खड़े हैं, तेरे ज्ञानकी पोथी चाहते हैं।

'ऊदांबाई, मेरी पोथी तो तलवार की धार (प्रेमका पन्थ) है। राणा ज्ञानको निबाहने वाला नहीं है।

'मीराँ भाभी, राणाजी का वचन अन्यथा न कर। उसे मान ले, नहीं तो उनके रूठने पर तेरा कोई सहारा न रह जायगा।

'ऊदांबाई, रमापति गिरिधारी लाल मेरी भीड़ बांटने आयँगे मैं उनसे प्रार्थना, आरजू-मिन्नत करती हूं।

ऊदांबाई, समझाते-समझाते थक गई। पर मीराँके हृदय पर उसका कुछ असर न हुआ। ऊदांबाई विवश होकर कहती है—

थाने बरज बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी।
राणो रोस कियो थाँ ऊपर, साधाँ मैं मत जा री॥
कुल कैं दाग लगै छै भाभी, निन्दा हो रही भारी।
साधां रे सङ्ग बन बन भटको, लाज गुमाई सारी॥
बड़ां घरां थे जनम लियो छै, नाचो दे दे तारी।
बर पायौ हिंदुवाणों सूरज, थे कांई मन धारी॥
मीरां गिरिधर साधसङ्ग तज, चलो हमारे लारी।

इसके उत्तरमें मीराँने जो कुछ कहा वह भी उसके गिरधर [illegible]व।सजीव उदाहरण है। कैसा स्वाभाविकऔर सरस वर्णन है

[illegible]ारां बात नहीं जग छानी, ऊदांबाई समझो सुघर सयानी
साधू मात पिता कुल मेरे; सजन सनेही ज्ञानी।
सन्त चरण की शरण रैण दिन; सत्य कहत हूं बानी॥

राणा ने समझावो जावो; मैं तो बात न मानी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर; सन्तां हाथ बिकानी॥

ऊदांबाई इस प्रकार उत्तर पाकर भी एक दम निराश न हुई। वह मीरां के साथ रही। परन्तु, सिखाने के बदले उसने भी हरि भक्ति की सीख मीराँ से सीख ली। अब वह मीराँ का पक्ष-समर्थन करने लग गई। मीराँ के प्रति जो विद्वेष का भाव था वह अनुराग में परिणत हो गया। उसने मीराँ के भजन में योग देना प्रारम्भ कर दिया।

राणा को ऊदां के मीराँ-प्रेम का जब समाचार मिला तो वे ठक से रह गये। परन्तु इतने पर भी दम्भ के ऐनक उनके नेत्रों से न उतरे। वे क्रोध से जल उठे। अब उनकी मीराँ के मारने की धारणा और भी दृढ़ हो गई। फिर क्या था, दयाराम नामक एक पण्डे के द्वारा रतन-कटोरे में विष भर कर भगवान का चरणामृत कह कर मीराँ के पास भेज दिया। ऊदांबाई राणा की इस कूट-नीति को पहले ही से जानती थी। उसने मीरां को चिता दिया। किन्तु मीराँ ने उसकी मनाही न मानी। कहा, जो वस्तु भगवान के चरणामृत के नाम से आई है उसका परित्याग करना भगवद्भक्ति के सिद्धांतों के विरुद्ध है। यह कह कर गिरिधर नागर का उसने स्मरण किया और पात्र को सिर चढ़ा निःसंकोच भाव से उस चरणामृत को पी गई। किसी किसी का कथन है, कि उसी विष से मीराँका प्राणान्त हुआ। किन्तु अधिकांश लोगों का कथन है और यह ठीकभी जँचता है कि इस विष का मीराँके ऊपर विष

के समान नहीं, परन्तु अमृत का सा प्रभाव पड़ा। वह आग में तपे सोने की तरह निखर उठी। उसका प्रेम उज्ज्वल हो चला। विष पान से मीराँ का प्राणान्त नहीं हुआ; इसका प्रमाण मीराँ के एक नहीं, अनेक भजनों में पाया जाता है।

जहर का प्याला राणा भेज्या; अमृत दीन्ह बनाय।
नहाय धोय जब पीवण लागी; हो गई अमर अंचाय॥

× × ×

विषरो प्यालो राणोजी भेज्यो; दीज्यो मेड़तणी हाथ।
कर चरणामृत पी गई; म्हारे सबल धणी को साथ॥

× × ×

राणो विष को प्यालो भेज्यो; पीय मगन होई।

× × ×

बिषरा प्याला राणा भर भेजा; अमृत कर आरोगी रे॥

× × ×

विष को प्याली पी गई जी; भजन करे उस ठौर।
थारी मारी ना मरूं; म्हारो राखणवालो और॥

मीराँ ने राणा के पास लिख कर भेज दिया—

राणा जी तैं जहर दियो मैं जाणी।
जैसे कंचन दहत अगिन में; निकसत बारा बाणी।

लोक-लाज कुल-काण जगत की; दइ बहाय जस पाणी ॥
अपने घर का परदा कर ले; मैं अबला बौराणी ।
तरकस तीर लाग्यो मेरं हियरे; गरक गयो सनकाणी ॥
सब सन्तन पर तन मन वारों; चरण कमल लपटाणी ।
मीरां को प्रभु राख लई है; दासी अपणी जाणी ॥

मीराँकी इस अलौकिक शक्ति और जन-दुर्लभ कार्य-कलापको देखकर ऊदांबाईके हृदयमें मीरांके प्रति ऐसी श्रद्धा जगी कि उसने मीरांसे दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। कुछ दिनोंके बाद उसने मीरां से आग्रह किया कि 'तुम मुझे एक बार गिरधारीलालका प्रत्यक्ष दर्शन करा दो।' मीरां ऊदांके संकल्पका आशय समझ गई। उसने चम्पा और चमेलीको बुला लिया और गिरधारीलाल के भोगके लिये छप्पनभोग प्रस्तुत करने लगी। भोग आदि की सामग्री प्रस्तुत हो जाने पर मीराँ चम्पा, चमेली, ऊदांबाई आदि सहेलियोंके साथ श्रीकृष्ण-कीर्तनमें लगी।

तुम्हरे कारण सब सुख छोड़्या, इब मोहिं क्यूं तरसावो रे।
बिरह-विथा लागी उर अन्दर, सो तुम आय बुझावो रे॥
इब छोड़्यां नहिं बनै प्रभूजी, हंसकर तुरत बुलावो रे।
मीराँ दासी जनम जनम की, अंग सूं अंग लगावो रे॥

भजन करते-करते दो पहर रात हो गई। जब मीरांकी विरह-भावना और व्याकुलता चरम सीमा पर पहुँच गई तब भगवान्

श्रीकृष्ण मीरांके सामने उपस्थित हुए और मीरांको गलेसे लगाकर कहा—'तू इतनी अधीर क्यों है ?' मीरॉं प्रेम-गद्गद् हो गई। उसके मुंहसे कुछ क्षण तक एक शब्द भी न निकला। फिर उसे भोग-सामग्रीकी याद आई; परोस, आगे धरदिया और विनतीकी-

तुम जीमो गिरिधर लालजी।
मीराँ दासी अरज करे छे, सुनिये परम दयालजी।
छप्पन भोग छतीसों विञ्जन, पावो जन प्रतिपालजी॥
राजभोग आरोगो गिरधर, सनमुख राखो थाल जी।
मीरां दासी चरण उपासी, कीजै बेग निहालजी॥

फिर क्या था ? श्रीकृष्णसे न रहा गया और वे सबके सामने ही मीरांके साथ खानेको बैठ गये। सचेत प्रहरीगण मीरांके शयनागारमें पुरुषके शब्दको सुनकर राणाके पास दौड़ गये और उन्हें जगा कर कहा कि मीराँके घर कोई पुरुष आया है और उसके साथ हास-परिहास कर रहा है। राणा इस संवाद से क्रोधोन्मत्त हो गये और नङ्गी तलवार ले सीधे मीराँके महलमें प्रवेश कर गये। वहां किसी पुरुषको न देख मीराँसे पूछ-ताछ की मीराँने कहा—'मेरे परम हितैषी गिरिधारीलाल तो तुम्हारे सामने उपस्थित हैं, फिर तुम मुझसे क्या पूछते हो ? राणाने चारों ओर देखा, किन्तु चम्पा, चमेली और ऊदांबाईके सिवा और किसीको न पाया। कुछ कालके उपरान्त राणाकी दृष्टि अचानक पलंगपर जा पड़ी। वहां उन्होंने एक विराट् पुरुषको देखा देखनेके साथही

वे भयके मारे कांपने लगे। इतना ही नहीं, वे मूर्च्छित होकर गिर भी पड़े। जब चेतना आई तब उन्होंने मीराँसे पूछा-'तू हमारे कुलगुरु एक लिङ्गजीकी पूजा अर्चना क्यों नहीं करती ? तेरे इस देवताके स्वरूपको देखकर तो हमारे प्राण कांप जाते हैं, ऐसा कह कर राणा भयविह्वल हो वहाँ से चले गये।

इस अलौकिक घटना को देख कर भी राणा के हृदय के प्रति तनिक भी सहानुभूति का संचार नहीं हुआ। मीरां के प्राण के प्यासे वे बने ही रहे। एक दिन उन्होंने एक टोकरी में अनेक विषधर सर्पों को बन्द कर मीरां के पास भेज दिया और कहलाया कि यह तुम्हारे भगवान की पूजा के लिये फूल की मालाये हैं। भगवत् कृपा से मीराँ को राणा के दुर्भाव का भान हो गया था। परन्तु, भक्ति प्राण मीराँ ने उसे सादर ग्रहण किया। लोगों को यह देख कर आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि मीरां ने ज्यों ही टोकरी का ढक्कन उठाया त्यों ही वे सांप शालिग्राम के रूप में परिणत हो गये। मीरां ने उसे अपने गले से लगाया। जिस प्रकार विष उसके लिये अमृत हो गया उसी प्रकार सर्पा-वलि शालिग्राम बन गई।

यह भी कहा जाता है कि राणाने मीराँके पास एक खाट भेजी जिसमें लोहे के कांटे जड़ दियेगये थे। मीरां ने ज्योंही उस पर पांव रक्खा त्यों ही लौह-कंटक कोमल कमल-जाल में परिणतहो गये मीराँ ने अपनी कविता में इस कंटक-शय्या का भी उल्लेख किया है।

शूल सेज राणा ने भेजी; दीज्यो मीराँ सुलाय ।
सांझ भई मीराँ सोवण लागी; मानों फूल सजाय ॥

सत्ययुग में जिस प्रकार भक्त प्रह्लाद की भगवान् ने हिरण्य-कश्यप के अत्याचार से रक्षा की थी, उसी प्रकार कलियुग में राणा विक्रम के उत्पीड़न से मीरां की रक्षा की । राणा के उत्पीड़न को मीरां ने तनिक भी चित में नहीं लगाया । उसने दुःखको दुःख नहीं माना क्यों कि दुःख के मार्ग से ही उसे परमात्मा का साक्षात्कार हुआ था । भगवान् की कृपा उसे उसी वेदना में प्राप्त हुई थी । वह जानती थी कि भक्तों को दुःख की चिन्ता न करन चाहिये, क्योंकि पहले भी जिन भक्तों पर आपत्ति के पहाड़ गिरे उनकी रक्षा हुई । इसीलिये वह विपत्ति पड़ने पर बार-बार पुकार उठती थी —

हरी तुम हरौ जन की भीर ।
द्रौपदी की लाज राखी; तुम बढ़ायो चीर ॥
भक्त कारण रूप नर हरि; धर्‌यो आप शरीर ॥

अन्त में कहती है:—

दासी मीराँ लाल गिरिधर दुख जहँ तहँ पीर ।

एक स्थान पर और कहती है:—

दासी मीरां लाल गिरिधर, 'सांकड़ा रो साथी ॥'

सचमुच Trouble is the supreme blessing.

Men are born for it, as they attain their aims through it.

अर्थात दुःख सर्वोत्तम वरदान है। मनुष्य दुःख झेलने के लिये ही उत्पन्न हुआ है, क्योंकि दुःख के मार्ग से ही वह अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करता है।

राणा का अत्याचार बढ़ता गया। मीराँ को चित्तौड़ रहना दूभर जान पड़ने लगा। इधर मीराँ के चाचा बीरमदेव जी को जब मीराँके कष्टका समाचार मिला वे बड़ेही दुःखी हुए। उन्होंने मीराँको मेड़ते बुला लिया मीराँके वहां चले आने पर चित्तौड़ पर विपत्तिके बादल मड़राने लगे। संवत् १५८८ में गुजरातके बादशाह सुलतान बहादुरने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया और दो बार लूट भी लिया। राणा विक्रमको भागकर बूंदी चला जाना पड़ा। बादशाह के आक्रमण से चित्तौड़ निर्बल पड़ गया। इसी अवसर पर पृथ्वीराज के खवासाना पुत्र बनवीर उनको मार कर संवत् १५९२ में गद्दी पर बैठ गया।

इधर जोधपुरके मालदेवजीने बीरमदेवसे मेड़ता छीन लिया। इस प्रकार नैहर और ससुराल दोनोंकी दुरवस्था देखकर मीरांने तीर्थाटन करनेका संकल्पकर लिया और वह प्रस्थानभी कर गई।

तीर्थाटन करते-करते मीरां वृन्दावन आईं। वहां वह साधुओं की संगतमें रहने लगी। कहा जाता है कि जीव गोस्वामी उस समय वृन्दावनमें ही थे। उनका नाम सुनकर मीरांके हृदयमें उनके प्रति आदरका भाव उदय हुआ। वह उनसे मिलने गई।

किन्तु, गोस्वामीजीने उसे अपने घर आने से निषेध किया और कहला भेजा कि 'मैं किसी स्त्रीसे नहीं मिलता'। मीराँने उनको उत्तर भेजा कि सुना था कि वृन्दाबनमें एकमात्र पुरुष श्रीकृष्णही हैं और सब उनकी सखी हैं। किन्तु आज जान पड़ा कि श्रीकृष्ण का साझेदार भी यहाँ कोई है। इस स्पष्ट प्रेमपूर्ण उत्तरको सुन कर गोस्वामीजी बड़े ही लज्जित हुए और उन्होंने मीरांको आदर भावसे घरमें बुला लिया और भक्ति-विषयक चर्चा की।

मीरांके अटल प्रेम और कृष्णपरायणताको देखकर गोस्वामी जी बड़े ही प्रसन्न हुए और अपनी धृष्टताके लिये उससे क्षमा मांगी। कुछ दिनों तक वृन्दाबनमें रहकर मीरांने द्वारकाके लिये प्रस्थान किया। वहां वह रणछोड़जीकी पूजा-अर्चना, साधुओंकी संगत और भगवद्भजनमें समय बिताने लगी।

इधर अनेक दुर्घटनाओंके बाद संवत् १५९८ में विक्रमके छोटे भाई उदयसिंहने बनवीर को हटाकर चित्तौड़ अपने कब्जेमें कर लिया और सं० १६०० में बीरमदेवजीने भी मेड़ते पर पुनः अधिकार पाया। किन्तु, वे दो मास भी राज्य न कर सके कि उनका देहान्त हो गया। उनके उपरांत राव जयमलजी मेड़तेकी गद्दी पर बैठे। गद्दी पर बैठनेके कुछ दिनोंके बाद उन्होंने मीरांको द्वारकासे लौटा लाने का प्रयत्न किया। चित्तौड़के महाराणा उदयसिंहजीने भी मीरांको चित्तौड़ लौट आनेका आग्रह किया। परन्तु मीरांने नैहर और ससुराल दोनोंके आग्रहको अस्वीकार कर दिया। उस ने कहला भेजा कि रणछोड़जीके आश्रयको छोड़कर भला कौन

दूसरेका आश्रय चाहेगा ? तबसे आजीवन वह वहीं रही। इसके उपरांत क्या हुआ, इतिहास इस सम्बन्धमें मौन है। हां अनुमान किया जाता है कि उसकी मृत्यु वहीं सं० १६०३ में हुई। इस सम्बन्धमें भी एक जनश्रुति प्रसिद्ध है। कहते हैं कि मीराँको लौटालनेके लिये जो ब्राह्मण द्वारका भेजा गया था उसने जब्र देखा कि मीरां बातोंसे न मानेगी तब उसने धरना देनेका निश्चय किया। वह रणछोड़जीके मन्दिरके द्वार पर लेट गया। मीरां जब दर्शन को गई, तब सामने ब्राह्मणको धरना दिये देख ठिठक गई और वहीं बैठकर उसने यह भजन गाया—

साजन सुध ज्यूं जाने त्यूं लीजे हो।
तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजे हो॥
दिवस न भुख रैन नहीं निद्रा यूं तन पल पल छीजे हो।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर मिल बिछुरन नहीं कीजे हो॥

कहते हैं कि गाते-गाते मूर्तिमें समा गई।

मीरांबाईने भक्ति-मार्गके तीन ग्रन्थ बनाये। जिनमेंसे मुन्शी देवीप्रसादजी, जोधपुर लिखते हैं कि 'नरसीजीका मायरा' हमारे भी देखनेमें आया है। उसके आदिमें यह ठुमरी जंगलाराग की है।

गणपति कृपा करो गुणसागर जन को जस शुभ गाय सुनाऊँ।
पच्छिम दिसा प्रसिद्ध धाम सुख श्रीरणछोड़ निवासी।
नरसी को माहेरो मंगल गावे, मीरां दासी॥

क्षत्री बंस जनम मम जानो, नगर मेड़ते वासी।
नरसी को जस बरन सुनाऊँ, नाना विधि इतिहासी॥
सखा आपने संग जु लीने, हर मन्दिर पै जाए।
भक्ति कथा आरम्भी सुन्दर, हरिगुण सीस नवाए॥
को मण्डल को देश बखानूं, सन्तन के जस वारी।
को नरसी सो भयो कोन विध, कहौ महिराज कुंवारी॥
ह्वै प्रसन्न मीराँ तब भाख्यो, सुन सखी मिथुला नामा।
नरसी की विध गाय सुनाऊँ, सारे सब ही कामा॥

मध्यका एक पद्य

(राग जैजैवंतो)

सोवत ही पलका में मैं तो, पल लागी पल में पिऊ आए।
मैं जु उठी प्रभु आदर देन कूं, जाग परी पिव ढूंढ़े न पाए।
और सखी पिव सोय गमाए मैं जु सखी पिव जागि गमाए
आज की बात कहा कहूँ सजनी, सुपनामें हरि लेत बुलाए
बस्त एक जब प्रेमकी पकरी, आज भए सखि मनके भाए

अन्तिम पद

यो माहरो सुनै रु गुनि है, बाजे अधिक बजाय।
मीरां कहै सत्य करि मानो, भुक्ति मुक्ति फल पाय॥

बाकी ग्रन्थोंके नाम (१) गीतगोविन्दकी टीका और (२) राग गोविन्द हैं।

मीरांकी अधिकाँश रचनाओंकी भाषा राजस्थानी-मिश्रित ब्रज-भाषा (पिंगल) है। कुछ रचनायें शुद्ध राजस्थानी और कुछ शुद्ध

ब्रजभाषामें भी हैं। अलंकारका चमत्कार उसकी रचनामें नहीं मिलेगा, परन्तु भावोंकी सुकुमारता और सरलता उसकी विशेषता है। वाग्वैदग्ध्य नहीं, रसाभिव्यंजन उसमें अधिक मिलेगा जो कविताकी आत्मा है। ध्वनि संगीतमयी है। राग-रागिनी युक्त मीरां के पद सूरदासके पदोंकी भांति ही सुधी गायकों द्वारा गाये जाते हैं। उसका मलार राग तो भारत-प्रसिद्ध है।

किसी किसीका कथन है कि मीराँबाई पूर्वजन्ममें श्रीकृष्णकी गोपियोंमें थी। उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर श्रीकृष्णने उसे वचन दिया था कि कलियुगमें तुम्हारा स्वामी होऊंगा। जिस प्रकार बंगाल में चैतन्य श्रीकृष्णके अवतार माने गये और गौराँग महाप्रभुके नामसे प्रसिद्ध हुए, उसी प्रकार मीराँको लोग कृष्णप्रेयसी गोपीका अवतार बतलाते हैं। मीरांने भी अपने भजनोंमें यत्र-तत्र इसकी ओर निर्देश किया है:—

'मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उन बिन पल न रहाऊँ।'
'राणाजी म्हारी प्रीति पुरबली, मैं कांई करूँ।'
'मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पुरब जनम को है कौल।'
'मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, पुरब जनम के साथी।'
'मीरां दासी जनम जनम की, पड़ी तुम्हारे पाय।'
'पूर्व जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यूं छोड़ी जाय।'
'मीरां दासी जनम जनम की, अंग सूं अंग लगायो।'

इतना ही नहीं, मीरांके हृदयमें वह उक्ति सदैव चित्र-सी जगती रहती थी। वह कृष्णके वादेको भूली न थी। जब कभी उसे कृष्ण मिलनकी निराशा होती थी तब वह कृष्णकी पुकार करती और उन्हें अपनी प्रतिज्ञाकी याद दिलाती थी—

पिया अब घर आज्यो मोरे, तुम मोरे हूं तोरे।
मैं जन तेरा पन्थ निहारूँ, मारग चितवत तोरे॥
अवध बदोती अजहुं न आये, दुतियन सूं नेह जोरे।
मीराँ कहे प्रभु कब रे मिलोगे, दरसन बिन दिन दोरे॥

प्रियतम ,अब मेरे घर आ जाओ। तुम मेरे हो औरमैं तुम्हारी हूँ। मैं तुम्हारी अपनी हूँ। तुम्हारी दासी प्रतीक्षामें है, एक टकसे राह देख रही है। तुमने अवधि दी थी, (कहा था, कलियुग में मिलूंगा) परन्तु अब तक नहीं आये। (जान पड़ता है) किसी और के साथ नेहका नाता जोड़ लिया है। भला मुझसे कब मिलोगे ? तुम्हारे दर्शनके बिना दिन दूभर लगते हैं—जीवन भारसा प्रतीत हो रहा है।

जब कृष्णसे मिलन हो जाता है तब वह कृष्णके प्रति कुछ विशेष कृतज्ञता नहीं प्रकट करती, बल्कि अपना संकल्प पूरा करने के उपलक्षमें केवल उन्हें बधाइयाँ देती है। वह अपने को धन्य समझती है। यदि उसे भय है तो इसीका कि कहीं, प्रियतमसे फिर वियोग न हो जाय।

मेहा बरसबो करे रे, आज तो रमैयो मेरे घरे रे।
नान्ही नान्ही बूंद मेघ घन बरसे, सूखे सरवर भरे रे॥

बहुत दिनां पै प्रीतम पायो, बिछुड़न को मोहिं डर रे।
मीरां कहे अति नेह जुड़ायो, मैं लियो पुरबलो बर रे।

और जो कुछ हो, उपयुक्त वर्णनसे भारतीय-साहित्यक परम-परा की रक्षा होती है। भारतीय साहित्यमें प्रेमका जो चित्रण किया गया है वह क्षणिक दर्शनजन्य प्रेमका नहीं, वह प्रेम बहुत दिनों के सहवासका परिणाम है। सीता और राम, राधा और कृष्ण आदिके प्रेम-चित्रणमें आदिकवि बाल्मीकी और महाकवि व्यासने इसी नियम का पालन किया है। सूफी कवियोंकी तरह 'देखा कि वियोगाग्निमें जलने लगे' और पाश्चात्य कवियोंके Love at the first sight वाले प्रेम का अतिरञ्जनात्मक अभिव्यञ्जन भारतीय प्रेम-परम्परा के विरुद्ध है। मीरॉं का प्रेम-वर्णन भारतीय परम्पराके अनुकूल है। उसने अपने कृष्ण प्रेमका जो वर्णन किया है वह 'जनम-जनम के साथी' होने का परिणाम है।

मीरॉंबाई के जीवनवृत के सम्बन्ध में जो मतामत है उनमें कुछेक का उल्लेख करना यहां अप्रासंगिक नहीं होगा।

किसी किसी का मत है कि मीरॉं का विवाह राणा कुम्भ से हुआ था। इस सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि मीरां ने कृष्ण की मूर्ति के बिना विवाह-मंडप में जाने से अस्वीकार कर दिया था। चित्तौड़में कुम्भ और मीरां दोनों द्वारा निर्मित दो मंदिर बताये जाते हैं। इन जनश्रुतियों के आधार पर कर्नल टाड ने लिखा है—

"Khoombha married a daughter of the Rahtore of Mairta, the first of the clans of Marwar. Meera Bai was the most celebrated princess of her time for beauty and romantice piety. Her compositions were numerous, though better known to the worshipper of Hindu Appollo, than to the ribald bards."

किन्तु यह कथन नितान्त भ्रान्तिमूलक है। क्योंकि यह सभी मानते हैं कि मीराँ मेड़ताकी राजकुमारी थी। राव दूदाजी ने सं० १५१६ में मुसलमानों को परास्त कर मेड़ता पर अधिकार जमाया था। उनके जेष्ट पुत्र बीरमदेव जी का जन्म सं० १५३५ में हुआ था। मीरांबाई बीरमदेव जी के छोटे भाईकी कन्या थी। उसका जन्म सं० १५५५ में हुआ था। महाराणा कुम्भ की मृत्यु सं० १५४६ में हुई थी। अर्थात कुम्भ जी की मृत्यु के नौ-दस वर्ष उपरांत मीरां का जन्म हुआ। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मीरां कुम्भ की पत्नी थी — यह एकदम निर्मूल है। मारवाड़, मेड़ता और मेवाड़ आदि स्थानों में जो प्राचीन लिखित विवरण मिलते हैं, उन से पता चलता है कि महाराणा सांगा जी के पुत्र युवराज भोजराज के साथ ही मीरां का विवाह हुआ था।

यूरोप के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, भारतीय भाषाओं के विशेषज्ञ सर जार्ज ए० ग्रियसन मीरां को मैथिल —कोकिल विद्यापति की समसामयिक मानते हैं। वे लिखते हैं:—

In Rajputana, the most prominent figure is Meera Bai, a princess of Marwar, who was a contemporary of Vidypati:

परन्तु विद्यापति का समय विक्रमीय सं० पन्द्रहवीं शताब्दी माना जाता है। उनकी मृत्यु जैसा कि श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त आदि विद्वानों ने निश्चय किया है, सं० १४६७ वि० में हुई थी। इस प्रकार मीरां के जन्म होने से पचास साठ वर्ष पहिले ही विद्यापति इस असार संसार को छोड़ चुके थे। ऐसी दशा में ग्रियर्सन का उपर्युक्त कथन किसी प्रकार भी प्रमाणिक नहीं माना जा सकता।

साहित्यज्ञ पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थमें मीरांका जन्म सं० १५७३ माना है। अपने इस कथनके आधारका उन्होंने कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। मीराँके जीवन-चरित्रके सम्बन्धमें मुन्शी देवीप्रसादजी का मत अधिक स्पष्ट और प्रामाणिक प्रतीत होता है उन्होंने लिखा है—'रतनसिंह ने उनका (मीराँ का) व्याह सं० १५७३ में राणा साँगा के बड़े बेटे भोजराजसे कर दिया।' बेलवेडियर प्रेससे प्रकाशित 'मीराँ बाई की शब्दावली' के प्रारम्भमें जो मीराँका जीवन-चरित्र दिया गया है उसके अनुसार भी शुक्लजीका कथन भ्रान्तिमूलक ही सिद्ध होता है—"इनका (मीराँका) जन्म कुड़की गांवमें··· संवत् १५५५ और १५६० विक्रमी के दर्मियान हुआ था और उदयपुर के सिसोदिया राजकुल में महाराणा सांगाजी के कुंवर भोजराज के साथ सं० १५७३ विक्रमी में ब्याही गई।" जान

पड़ता है कि आचार्य शुक्ल जी ने विवाह संवत् को भूल से जन्म-संवत् समझ लिया हो, पर इस प्रकार के प्रामाणिक ग्रंथ में ऐसा होना असम्भव-सा जान पड़ता है।

यह भी कहा जाता है कि जब राणा ने मीराँ को बहुत क दिया तब तंग आकर उसने निम्नपद गोस्वामी तुलसीदास को लिख भेजा था:—

स्वस्ति श्रीतुलसी कुल-भूषण दूषण-हरन गोसाईं।
बारहिं बार प्रणाम करहुं, अब हरहु सोकसमुदाई।
घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरू भजन करत मोहिं देत कलेस महाई।
मेरे मात पिता के सम हौ हरि-भक्तन-सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखिये समुझाई।

इसका दूसरा पाठ, जो बेलवेडियरकी प्रतिमें उद्धृति है, यों है-

श्रीतुलसी सुख निधान, दुख हरन गोसाईं।
बारहिं बार प्रणाम करूँ, अब हरो सोकसमुदाई।
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु-संग अरू भजन करत, मोहिं देत कलेश महाई।
बालेपन तें मीरा कीन्हीं, गिरधरलाल मिताई।
सो तौ अब छूटत नहीं क्यों हूँ, लगी लगन बरियाई।

मेरे मात पिता के सम हौ, हरिभक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखियो समुझाई।

इसके उत्तरमें गोस्वामी तुलसीदासने विनय पत्रिकाका यह पद लिखकर भेजा था :—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कन्त ब्रज-बनिता, भये सब मंगलकारी।
नातो नेह राम सों मनियत, सुहृद सुसेव्य जहां लौं॥
अन्जन कहां आंख जो फूटै, बहुतक कहौं कहां लौं।
'तुलसी'सो सब भांति परम हित, पूज्य प्रानतें प्यारो।
जासों बढ़े सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो॥

कहा जाता है कि इस उत्तर को पाते ही मीरांबाई ने चित्तौड़ का परित्याग कर दिया।

उपर्युक्त घटना की सत्यता के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों को सन्देह है। भक्त कवि श्रीवियोगी हरि लिखते हैं—

"गोसांई तुलसीदासजीकी बात ऐतिहासिक सिद्ध नहीं होती। अधिक से अधिक इस समय गुसांई जी चौदह वर्ष के रहे होंगे। इस अवस्था में गुसांई जी की भक्ति का कुछ विकास नहीं हुआ था। अतएव 'जाके प्रिय राम वैदेही वाला पद 'विनय पत्रिका'

में सर्वसाधारण के लिये लिखा गया है न कि विशेष कर मीरां के लिये।"

श्री वियोगी हरि तथा उनके समर्थक विद्वानों को उक्त पत्र-व्यवहार में सन्देह है उसके दो कारण हो सकते हैं। एक यह कि मीरांके पत्र के दो पाठ मिलते हैं, जैसे कि ऊपर दिये गये हैं। दोनों पाठों में बहुत अन्तर है। इसके अतिरिक्त पत्र की भाषा मीराँ के अन्य पदों की भाषा से निराली है और बाद की जान पड़ती है। इसमें राजस्थानी की पुट नहीं है जो मीराँ की रचना की विशेषता है। पाठान्तर का कारण चारणों और भाटों द्वारा मौखिक गाया जाना भी हो सकता है, जिसका संशय तब तक बना ही रहेगा जब तक मीरां के पदों की कोई ऐसी हस्तलिखित प्रति नहीं मिल जाती जो शुद्ध और प्रामाणिक मानी जा सके।

दूसरा कारण यह है कि वे गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म वर्ष सं० १५८६ वि० मानते हैं, जैसे कि प्रसिद्ध रामायणी पंडित रामगुलाम द्विवेदी ने भक्तों की जनश्रुति के आधार पर निश्चय किया था। बाद को डाक्टर ग्रियर्सन ने भी द्विवेदी जी के उक्त निर्णय का समर्थन किया। जब आदि में ही भ्रमका निराकरण नहीं हुआ तो आगे क्योंकर हो सकता था ?

परन्तु जब हम बाबा वेनीमाधवदास के 'गुसाई चरित' और महात्मा रघुबरदास के 'तुलसी चरित' में दिये गये गोस्वामी तुलसीदास के जन्म वर्ष को ठीक मानते हैं तब हमें उक्त पत्र व्यवहार में संदेह नहीं रह जाता है। उपर्युक्त दोनों चरितों में

गोस्वामी जी का जन्म सं० १५५४ दिया हुआ है। इस जन्म-सं० को ग्रहण करने से तुलसीदास जी की आयु १२६ वर्ष आती है, जो डा० ग्रियर्सन को असम्भव जान पड़ी। परन्तु तुलसीदास जी जैसे पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले महात्माओ के लिये इतनी बड़ी आयु असम्भव नहीं कही जा सकती। इसके अतिरिक्त जब हम मृत्यु आदि जीवन की अन्य घटनाओ के सम्बन्ध मे बाबा बेनीमाधवदास के 'गुसांई चरित' को प्रमाणिक मान सकते हैं तब भला जन्म-सं० के सम्बन्ध मे हम उसे प्रमाणिक क्यो न माने। यदि हम तुलसीदास का जन्म सं०१५५४ वि० स्वीकार कर लेते हैं तो वे मीराँ से उम्र मे बड़े ठहरते हैं जो मीराँ के पत्र मे दिये 'मेरे माता पिता के सम हो' की यथार्थता को सिद्ध करता है। बड़ो को माता-पिता के समान समझना भारतीय सदाचार और शिष्टाचार दोनो के अन्तर्गत है।

बाबा बेनीमाधवदासके गुसांई चरितमे भी उक्त पत्र व्यवहार का उल्लेख है। अतः केवल इस तथ्य के आधार पर कि मीराँ की मृत्युके समय तुलसीदास केवल चौदह वर्षके रहे होगे, इस घटना को कपोल कल्पना मान लेना ठीक नहीं प्रतीत होता जब तक कि तुलसीदासजी के जन्म-सवत् मे संशय की गुञ्जाइश है। इस के अतिरिक्त अभी मीरा के भी जन्म-मरण सवत् संशय की सम्भावना के परे सिद्ध नहीं हुये है। ऐसी अवस्था मे उक्त पत्र-व्यवहार को हम निरा निर्मूल नही कह सकते।

यह भी कहा जाता है कि जब मीराँ की भगवद्भक्ति की प्रशंसा

चारों ओर फैल गई तब एक समय अकबर बादशाह अपने दरबार के अमर गायक तानसेन को साथ लेकर मीरां के पास गये बादशाह ने मीराँ से राजनीतिक विषयों पर वार्तालाप किया। मीरां को राजनीति सम्बन्धी विषयों पर गम्भीर विचार प्रकट करते देख बादशाह परमचकित हुए। तानसेन का भी उक्त अवसर पर मीराँके साथ राग-रागनी आदि संगीत-शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर बिचार विनिमय हुआ। तानसेन को मीराँ के सामने सिर झुकाना पड़ा और वे विस्मित रह गये कि एक राजपूत महिला गायन कला और संगीत–शास्त्र में कितनी पटुता रखती है।

इस जनश्रुति में तथ्य इतना ही है कि मीरां कीर्तिलब्धा गायिका थी। राजनीतिका भी उसे ज्ञान था (?) तानसेन और अकबर के साथ उसका साक्षात्कार तथा इन दोनों का उसकी बहुश्रुति देखकर विस्मित होना मीराँ के अन्धभक्तों की कपोल कल्पना मात्र है। अकबर का जन्म १५४२ ई० में हुआ था। मीराँ की मृत्यु के समय वे केवल पाँच वर्ष के रहे होंगे। इतनी छोटी अवस्था में जब कि वे राजगद्दी पर बैठे भी नहीं थे, तानसेन को साथ करके मीराँ के पास जा कैसे सकते थे? यदि गये भी हों तो राजनीति पर वे बात ही क्या कर सकते? उस समय तो उनके लिये वर्णमाला का ज्ञान ही अलम् रहा होगा। यदि थोड़े काल के लिये हम मीराँ की निधन-तिथि को सं० १६०३ के २० वर्ष बाद मान भी लें, जैसा कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र आदि

ने इन किंवदंतियों को सत्य सिद्ध करने के लिये मान भी लिया है, तो भी मीराँ के राजनीति-ज्ञान से अकबर विस्मित हो गये हों यह एकदम असम्भव प्रतीत होता है, क्योंकि मीरां की रचना में कहीं राजनीति की गन्ध तक नहीं है।

कोई-कोई मीराँ को राठौर-सरदार जयमल की बेटी बतलाते हैं और उसका जन्म सं० १६७५ मानते हैं। यह मत तो किसी प्रकार भी मान्य नहीं हो सकता। इससे मीराँ तुलसी के पारस्परिक पत्र व्यवहार की बात और भी मिथ्या प्रमाणित हो जाती है, क्योंकि गोस्वामी तुलसीदास की मृत्यु सं० १६८० में हुई थी, जिस समय मीराँ पाँच वर्ष की होती है। भला वह तुलसीदास को पत्र क्योंकर लिखती? गायक तानसेन को साथ करके अकबर भी मीराँ से कैसे मिले, यह बात और भी चिंतनीय है। सम्राट अकबर तो उस समय कब्र में क़यामत के दिन गिनते रहे होंगे। वे मीराँ से साक्षात्कार करने को कैसे आ सकते थे।

जो कुछ हो, मीराँ का जीवन पुनीत प्रेमका रोचक इतिहास है, गोपिका-बल्लभ बाल-गिरिधर की मधुरस्मृति जिसकी कथावस्तु है, यातनाओं की आराधना जिसके अध्याय हैं और राग-रंजित स्वरलहरी जिसकी शृंखला है। वह राज कन्या थी, राजमहिषी हुई; परन्तु उसकी आकाँक्षा भोग-बिलास के पिंजड़े में बन्द रहने को न थी। स्वेच्छा से वह दरिद्रता की उपासिका बनी, सँासारिक सुखों को छोड़ उसने नियति-निर्मित दुःखों को अपनाया, पुष्प-शय्यापर विश्राम लेनेके बदले कंटक-जाल पर उसने आसन

जमाया, सखी-सहेलियों की चाटूक्तियों से पिण्ड छुड़ा गिरिधरकी रट लगाना उसने अपना एक-मात्र धर्म माना। जो राजस्थान चन्द, जगनिक आदि कवियों के ओजस्वी हुंकार के गम्भीर गर्जन से झंकृत और विजयोल्लास-पूर्ण स्वाभिमान से उन्मत्त हो रहा था, उस राजस्थान को मीराँ ने अपने सहजकोमल, श्रुतिमधुर और भाव-सरल प्रेम-संगीत की वीणाविनिन्दिनी स्वर-लहरी से मन्त्र-मुग्ध कर दिया—मुरली मनोहर की वंशी-ध्वनि सुनाकर वहां के निवासियों के हृदय में कृष्णभक्ति का बीज वपन किया। ओजप्रधान मरु-प्रदेश में उसने भक्ति की पुनीत धारा बहा दी, जिसमें स्नान कर वह स्वयं कृतकृत्य हुई और आज भी कितने कुत्सित अपधी कुत्सा धो बहाते हैं।

मीराँ की उपासना माधुर्य-भाव की थी। भावकी वह मधुरता भाषा में भी उसी तीव्रता से मुखरित है। उसका प्रेम संगीत-स्त्रोत के साथ फैला है। वह उच्च कोटि की गायिका भी थी। स्वयं संगीत की रचना करती और स्वर को स्वरूप प्रदान करती थी। संगीत उसकी काव्य-कला की विशेषता है और काव्यकला उसके सगीत-प्रेम को उल्लसित करती है। इन दोनों के बीच होकर प्रेम-साधना या भक्तिभाव की सरस कल्याणमयी धारा बहती है। विद्यापति, सूर, कबीर, दादू आदि सभी भक्त कवियों की अन्तर्वाणी संगीत के रूप में प्रकट हुई है। परन्तु कदाचित् एक दो को छोड़कर किसी की रचना में उस 'सर्वानुभूति' का अभिव्यंजन न हो सका, जो मीराँ की वाणी की सहचरी है। जान

पड़ता है कि मीराँ का आन्तरिक प्रेम बहुमुखी सोतों में फूट पड़ा और उसकी वाणी के शब्द-शब्द को परिप्लावित कर दिया। सङ्गीत उसके जीवन का प्रतिरूप-सा जान पड़ता है पति के पर्यवसान में उसे मुरलीमनोहर के आने की आहटका भान हुआ। वह प्रफुल्लवदना हो गाती हुई स्वागत को उठ दौड़ी। उसकी चिरलालसा सिद्ध होती-सी दिखाई दी। मरणशील पति के बदले अमर आराध्य की आराधना करना उसके जीवन की आदिशिला थी, जो उसे उसी क्षण प्राप्त होने को थी—

ऐसे बर को क्या करूँ, जो जन्मे और मरि जाय।
बर करिये यक सांवरो री, मेरो चुड़लो अमर हो ज़ाय॥

पति की मृत्यु से वैधव्य का अनुभव उसे नहीं हुआ, प्रत्युत अमर सांवलिया को पाने में उसने अपने सधवापनकी अनुरंजिनी ज्योत्स्ना पाई। ठीक है, प्रेम का संसार इस संसार के नियमों को नहीं मानता। मीराँ के इहलौकिक पति गिरिधारीलाल को उससे प्रेम करते नहीं देख सकते थे, इसीलिये उन्होंने इस लोक से महाप्रयाण किया। मीराँ तो अमर पति के विरह का गीत गाती रही—

मैं विरहिन बैठि जागूं, जगत सब सोवै रे आली।

भारतीय धर्म-साधना के इतिहास में आत्मविस्मृति और आत्म—समर्पण की आकांक्षा सर्वत्र दिखाई पड़ेगी। यही आत्मसमर्पण की आकांक्षा भारतीय साधन का मूलमन्त्र रही है। भगवान् ने स्वयं कहा है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

हे अर्जुन, तुम समस्त कर्मों को मुझे अर्पित कर दो। जो खाओ, जो होम करो, जो कुछ दान दो, जो तप करो, चाहे जो कुछ भी करो, सभी मुझे अर्पित कर दो। यह आत्मसमर्पण की अभिलाषा उसकी वाणी में सर्वत्र सजीव प्रतिमा के रूप में प्रतीयमान है। राजसुख कुलकानि, और अहमत्व सब को भूल कर वह गिरिधारीलाल की हो गई। गिरिधारीलाल भी मुझे उसी रूप में स्वीकार करें जिस रूप में मैं उनकी होना चाहती हूँ-इस स्वीकृतिकी प्राप्ति के लिये वह आकुल रहा करती थी। वही आकुलता उसके काव्य की काकली है। उस अलौकिक आकुलता की ध्वनि ऐसी अकृत्रिम और स्वतःसंचालित है कि पाठक और श्रोताओं के हृदय पर उसी तीव्रता के साथ उसका प्रभाव पड़ता है—वह मर्मस्पर्शी है—करुणा और प्रेम की पिटारी को खोलने की कुंजी है।

अमर पति से मिलने को जाती हुई उत्कण्ठिता का शृङ्गार बहुमूल्य आभूषण नहीं-हार्दिक गुण चाहिये। मीराँ अपने गिरिधारीलाल से मिलने को चली है उसके सहज शृङ्गार उसी के शब्दों में सुनिये—

ओढ़ण लज्जा चीर, धीरज को घांघरो ।
छिमता काँकण हाथ, सुमत को मूंदरो ॥
पूंची है विश्वास, चूड़ो चित ऊजरो ।
दिल दुलड़ी दरियाव, साँच को दोवड़ो ॥

दाँताँ अमृय मेख, दया को बोलणो ।
उबटन गुरु को ज्ञान, ध्यान को धोवणो ॥
कान अखोटा ज्ञान, जुगत को भूंठणो ।
बेसर हरि को नाम, काजल है धरम को ॥
जौहर शील सन्तोष, निरत को घूंघरो ।
बिंदली गजमणि हार, तिलक हरि प्रेम को ॥
सज सोला सिंगार, पहिरि लीनी राखड़ी ।
साँवलिया सों प्रीति, औराँ से आखड़ी ॥
पतिबरता के सेज, प्रभूजी पधारिया ।
गावे मीराँ बाई, दासि कार राखिया ॥

यह संसार असार है—माया है—मिथ्या है । सत्य और सार तो परमात्मा ही है । संसार के इस मायामय आवरण को दूर कर मीरां गिरिधरनागरकी खोजमें वृन्दाबन जा पहुंची । वहां निर्जन राजप्रसाद के कमरे में वह बैठी हुई थी कि सुरभिभार से लदी शीतल मन्द बयार उसके शरीर को छूती हुई निकल गई । खिड़की की ओर उसका मुख था और सामने दूर पर नदी की जल राशि लोल लहरों से मुखरित हो रही थी । उस दृश्य से उसकी अमर-आराधना की सोई 'सुरती' जग उठी, मुरलीमनोहर का विहारस्थल स्मरण हो आया और फूलों की महकमें उसे अपने प्रियतम के निश्वास का भान हुआ । फिर क्या था वह गाने लगी—

नैन ललचावत जीवरा उदासी,
साँवल बन में बाजे साँवल की बाँसी ।

रैन में सैन में मोरा नैना न लागे,

प्रीतम के श्वास आवे कुसुम-सुवासी ॥

आज मेरी आंखें ललच रही हैं, किन्तु मेरे चित्त को चैन नहीं। वह तो परम उदास है। हरित्‌श्यामल बन में सांवलिया की बांसुरी बज रही है। रात को—सोने के समय भी मेरी आंखें खुली ही रहती हैं, नींद आती ही नहीं; और फूलों की महक में लदा प्रियतम का निश्वास मेरे शरीर को स्पर्श कर जाता है।

अपने गिरिधर नागर की सहानुभूति के लिये, आत्मसमर्पण करने के लिये और प्रेम-योग में सिद्ध पाने की आशा से उसने घर-द्वार, कुटुम्ब-परिवार, अपने-पराये सब का त्याग कर दिया। अपने अमर पति की खोज में उसने तीर्थों की यात्रा की, कंटकाकीर्ण पथों और बीहड़ जंगलों की भी चिन्ता न की। उसका यह अनियमित जीवन महान आदर्श की ओर उन्मुख था। उस दिन सांसारिक मनुष्यों ने उस पर कलङ्क के पङ्क फेंके, उसे पागल करार दिया और उसकी हँसी उड़ाई, किन्तु असीम आकाश के ग्रहों-उपग्रहों और तारकावलियों ने उसका अभिनन्दन किया। वह पगली थी। बड़े-बड़े प्रेमी, महान साधक और यशस्वी कवि सभी पागल होते हैं और वह भी उसी श्रेणीकी एक जगमगाती ज्योति थी। जो शक्ति इस सृष्टिमें अनन्त कालसे नित्य नूतन लीला करती आ रही है, अचिन्त्यको चेतनके रूपमें दिखाती आ रही है तथा अपने अनेक कार्योंसे विस्मय और विचित्रताका सृजन करती है, वह सब पागलोंसे बढ़ कर 'पगली रानी' है। परम्परागत रूढ़ियोंका ध्वंस करने वाला सचमुच पागल है। इसीलिये मीराँ पगली थी, क्योंकि उसने एकलिंगके देशमें कृष्णभगवानकी उपासनाका आदर्श सामने रखा। वह अद्वितीय

प्रेमिका थी, प्रेमकी प्रचारिका थी और प्रेम प्राण थी। इसीलिये वह पगली थी। प्रेमी, कवि और पागल एक है। शेक्सपियरने कहा है:—

The lunatic the lover and the poet
Are of imagination, all compact

राजकन्या, राजमहिषी मीराँने कृष्ण-प्रेमके मार्गमें किसी प्रकार के कुश-कंटकों और बिघ्न-बाधाओंकी परवा न की। उसने उसका कभी मनमें ख्याल भी नहीं किया। इस सम्बन्धमें वह उदासीन थी, विपत्तियोंके पहाड़ उस पर टूटे, पर वह दृढ़ रही। उसकी ओर उसने दृष्टि तक नहीं डाली। उसका एकमात्र लक्ष्य नन्द-नन्दन गोपाल थे—यशोदाके लाड़िले लाल थे। उसने अपने आराध्यदेव गिरिधरका रूप इस प्रकार चित्रण किया है—

बसो मेरे नैंनन में नन्दलाल।
मोहनि मूरत साँवरि सूरत, बने नैन विसाल॥
अधर सुधा-रस मुरली राजित, उर वैजन्ती-माल॥
छुद्र घण्टिका कटि-तट शोभित, नूपुर सब्द रसाल॥
मीराँ प्रभु सन्तन सुखदाई, भक्तवछल गोपाल॥

अन्त में अपने प्रियतम की इन शब्दों में अराधना करती है और 'सन्तन सुखदाई भक्तवत्सल' कह कर नाम को सार्थक करने का निर्देश करती है कि मुझे अपनाओ। प्रकट सबों से अपने सहज प्रियतम का रूप चित्रण इस प्रकार करती है—

जब से मोंहि नन्दनन्दन दिष्ट पड़ो माई।
तब से परलोक लोक कछु ना सुहाई।
मोरन की चन्द्रकला शीश मुकुट सोंहै।
केशर को तिलक भाल तीन लोक मोहै।
कुण्डल की अलक झलक कपोलन पै छाई।
मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई।
कुटिल भृकुटि तिलक भाल चितवन में लौना।
खंजन अरु मधुप मीन भूले मृग छौना।
सुन्दर अति नासिका सुग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु भेष धरे रूप अति विशेखा।
अधर बिम्ब अरुण नैन मधुर मन्द हाँसी।
दसन दमक दाड़िम दुति चमक चपला सी।
छुद्रघण्ट किंकिनी अनूप धुनि सुहाई।
गिरिधर नागर अंग अंग मीराँ बलि जाई।

वर्णन में कितनी स्वाभाविकता है! हृदय निकाल कर रखदिया है।

इधर मीराँ इस प्रकार कृष्णप्राणा हो रही थी; किन्तु उसके गिरिधर तो सहज ही में मानने वाले नहीं थे, वे बड़े ही निठुर थे। वे उसे कसौटी पर परख कर अपनाना चाहते थे। दूर से किंकिनी की ध्वनि सुना कर उन्होंने मीराँ को पथ का एकाकी पथिक कर छोड़ा। मीराँ पागिलिनी की तरह घट-घट ढूंढने लगी, परन्तु उसे कहीं कोई साथी नहीं मिलता था। व्याकुल होकर वह एक समय बोल उठी—

तुम्हरे कारन सब सुख छोड़या, अब मोहि क्यूँ तरसावो रे।
अब छोड़्यां नहीं बने प्रभु जी चरण के पास बुलाओ रे॥

तुम्हारे लिये ही तो मैंने सब कुछ छोड़ दिया, तब फिर अब और क्यों तरसाते हो? ऐ मेरे प्रभो, मुझे छोड़ कर अब तुम क्यों कर रह सकोगे? अपने श्रीचरणों में मुझे बुलालो।

प्रकृति की नित्यनूतन लीलाका अवलोकन सभी करते हैं, पर सभी उसका चित्र अंकित नहीं कर पाते, जो करते हैं उनमें भी एकता नहीं होती, वही अनैक्य विविध भावों का उन्नायक है। प्राकृतिक दृष्यों का ज्यों-त्यों चित्रण कर देना कला नहीं—वह फोटोग्राफी है। जब तक उसका चेतन हृदय से सम्बन्ध नहीं होता तब तक वह प्रभावोत्पादक भी नहीं हो पाता। मीराँ ने प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में, उसकी कार्यवलियों में अपने प्रियतम के गुणों को गुञ्जायमान देखा है।

विश्वप्रकृति उसे रह-रह कर व्याकुल कर देती है, उसकी सुप्त उत्कण्ठाको जगा जाती है और वह प्रेम-विभोर हो गा उठती है। रिमझिम-रिमझिम वर्षा, बिजली की चकाचौंधनी चमक, मेघों का कर्णभेदी गर्जन मीराँ को उन्मना कर देते हैं और वह अपने अनन्य हृदयधन को पाने के लिये उतावली हो जाती है।

सुनी मैं हरि आवन की अवाज।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल मधुरे साज।
गरजे बदरवा मेघा बोले, दामिनि छोड़ी लाज़।

धरती रूप नवा नवा धरिया, कन्त मिलन कैं काज।
मीरां के चित धीर न माने, बेग मिलो महाराज।

श्रीकृष्ण के आने की आहट मैंने सुनी है। मेंढ़क, मयूर और पपीहे बोलते हैं, कोयल कूज-कूज कर मधुरता बिखेर रही है, बादल गरजते हैं, मेंढ़क टर-टर ध्वनि में उसे बुला रहे हैं; बिजली ने लाज गँवा दी है और प्रियतम से मिलने के लिये पृथ्वी ने नवीन रूप धारण किया है। ऐसे अवसर पर मेरा चित्त किस प्रकार धीरज धारण करेगा! हे महाराज, शीघ्र मिल कर आस पुराओ।

उपर्युक्त वर्णन से पता चलेगा कि तुलसीदास राम-जानकी के वियोगानुभव का चित्रण करने में उतने सफल नहीं हुए, जितनी मीराँ हुई है। इसके लिये तुलसीदास को हम नीचा नहीं दिखा सकते। क्योंकि तुलसीदास ने राम-जानकी के विरह का वर्णन किया है और मीराँ ने अपने वियोगानुभव का ' एक वर्णन है, दूसरा आत्माभिव्यंजन।

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो':—मीराँ स्वय प्रियतमा के वियोग में व्याकुल थी, फिर नवपल्लव,नव वर्षा, नवशस्य आदि उसकी सुप्त व्यथा को जगाने के सिवाय और क्या करते? समाज ने उसे सहानुभूति की भिक्षा नहीं दी, फिर मायारूपणी प्रकृति उसे शान्ति कैसे प्रदान कर सकती थी! वह प्रकृति, परमात्मा और समाज तीनों अग्नि में तपाई गई और तपने के बाद खरे सोने की तरह विमल ज्योति के साथ निखर उठी।

यहां पर विद्यापति के एक गीत का स्मरण हो आता है—

सखि हे हमर दुखक नहीं ओर।
इभर बादर मांह भादर शून्य मंदिर मोर॥
तिमिर भरि भरि घोर यामिनि थिर बिजुरी पांतिया।
विद्यापति कह कैसे गँवाएव हरिबिने दिन रातिया॥

हे सखी, मेरे दुखों का कहीं ओर छोर नहीं है। उधर बादल पर बादल उमड़ चले आ रहे हैं। भादों का महिना है। इधर मेरा घर सूना है। घोर अन्धकार छाया हुआ है और बिजली कौंध जाती है। बताओ यह समय मैं किस प्रकार बिताऊं हरि के बिना तो दिन भी रात सा प्रतीत होता है—अर्थात कहीं कुछ नहीं सूझता

वास्तव में प्राय सभी भक्त कवियों के काव्य में इस प्रकार की अन्तर्देव से मिलने की आकांक्षा अभिगोचर होती है। कवीन्द्र-रवींद्र की कविता में भी यह हार्दिक आकांक्षा अंकित है—

आजि झड़ेर राते तोमर अभिसार
परान–सखा बन्धु हे आमार।
आकाश काँदे हताश-सम, नाइ ये घूम नयने मम,
दुयार खुलि हे प्रियतम, चाइ ये बार बार।

इसमें सन्देह नहीं कि रवीन्द्रकी गीताञ्जलि पर मीराँ के पदों का प्रच्छन्न प्रभाव है। दोनों ने स्वानुभूत विरह-वेदना का चित्रण किया है और दोनों की रचना में वेदना अपने वास्तविक रूप में चित्रित हुई है।

अधिकांश भारतीय साधकों का जीवन आध्यात्मिक कठोरता की मरुभूमि की तरह केवल बालुकामय ही नहीं है। सौभाग्य से

उसमें संगीत और कविता के रूप में शीतल छाया देने वाले 'ओएसिस' भी मिलेंगे। वे एक साथ ही साधक और कवि दोनों थे। किन्तु मीराँ साधक कवि थी। उसकी कविता साधना की पुत्री है, भगिनी नहीं। नैसर्गिक साधनासे ही उसकी कविता संयोजित जान पड़ती है।

कवीन्द्रकी कविता में कतिपय स्थानों पर मीराँ की अनुभूति की छाया दिखाई पड़ती है—

तेरा शुनिस्नि कि, शुनिस्नि तार पायेर ध्वनि,
ऐ ये आसे आसे आसे।
युगे युगे पले पले दिन रजनी,
से ये आसे आसे आसे।

मिलाइये—'सुनी मैं हरि आवन की आवाज'। इस आने की आहट सुनने में वियोग का दीर्घश्वास, कितनी सुख-कल्पना, कितनी रुदन-वेदना छिपी हुई है, इसका ठिकाना नहीं। हृदयदेव के लिये जो आकुलता है उसमें प्रेम की मधुरता का पुट है और सौंदर्य-चित्रण में जो सवत्र वेदना का विलास दिखाई पड़ता है, वह विरहानुभूति का स्पन्दन है। मीराँ के काव्य में विरह-वेदना मानों रुद्ध हृदयावेग को लिये विकसित हुई है। उस वेदना-कुसुम की अनिर्वचनीय सुरभि से काव्य-रसिक-भ्रमर थकते उकताते नहीं।

मीराँ प्रेम-मार्ग से चलकर प्रियतम से मिलना चाहती थी। यह प्रेम उसके हृदय का रहस्य—छायालोक का अन्तिम सम्बोधन था। यह प्रेम वाक्पटुता से प्राप्य नहीं, यह एकमात्र हृदयारा-

धनका फल, आत्मसमर्पण का पुरस्कार और वेदना-जगत का सुधाकर है। मीराँकी साधना प्रेमाराधन है, विरह जिसकी भूमिका है। उसका धर्म प्रेमार्चन है, आँसू जिसका अभिमंत्रित जल है। बाह्याडम्बर, आचार-विचार आदि सदा परमदेव से हमें दूर रखने की चेष्टा करते हैं। उन्हें भली भाँति पहचान कर छोड़ना होगा। किन्तु उसकी पहचान भी तो प्रेम ही के दीपक से होगी, प्रेम-मार्ग से ही उसका परिचय प्राप्त होगा। प्रेम और सेवा के युगल पाशों में उन बाधकों के हाथ-पैर बाँध देने होंगे, तभी इष्ट लाभ हो सकेगा। यही मीराँ की साधना थी जो उसके इस गान में पूर्णतः अभिव्यंजित है—

म्हाणों चाकर राखो जी।
चाकर रहसूं बाग लगासूं नित उठि दरसन पासूं।
बृन्दावन की कुंजगलिन में तेरी लीला गासूं॥
हरे हरे सब बनहिं बनाऊँ बिच बिच राखूं बारी।
सांवलिया के दरसन पाऊँ पहिरि कुसुम्मी सारी।
योगी आया योग करन कूं तप करने सन्यासी।
हरि भजन कूं साधू आये वृन्दावन के वासी।
मीरां के प्रभु गहिर गँभीरा हृदय रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दैहैं प्रेम-नदी के तीरा॥

मुझे तुम चाकर रख लो, मैं चाकर होकर रहूंगी। तुम्हारे लिये बाग लगा दूंगी, रोज तड़के उठकर तुम्हारा दर्शन पाऊँगी और वृन्दावन की कुंज-गलियों में तुम्हारी लीला गान करूंगी।

मैं हरे-भरे उपवनों का निर्माण करूंगी, बीच-बीच में क्यारी बना दूंगी और इसी कुसुम्मी साड़ी में मैं अपने साँवलिया का दर्शन पाऊंगी। योगी योगाभ्यास करने को आये हैं, संन्यासी तपस्या करने को और साधु-सन्त हरि-भजन के लिये यहाँ आये हैं—इसी लिये ये सबके सब वृन्दाबन में ठहरे हुए हैं। परन्तु मीराँ का उसके साथ-प्रियतम के साथ गहरा-प्रेम का सम्बन्ध है। इसलिये ऐ अधीर हृदय, धीरज धर, आधी रात को प्रेम-नदी के किनारे प्रभु का दर्शन होगा।

माई हे गोविन्द लीनो मोल।
कोई कहै सस्तों कोई कहै महँगो लीनो तराजू तोल॥
कोई कहै घर में कोई कहै वन में राधा संग किलोल।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर आवत प्रेम के मोल।

भाई, मैंने गोविन्द को मोल लिया है। कोई सस्ता बताता है, कोई मंहगा; परन्तु मैंने तो तराजू पर तौल कर ठीक ठीक लिया है, पूरा दाम देकर लिया है। कोई उसे नन्द-यशोदा के घर में बताता है, कोई यमुना-तटके कुञ्ज-बन में, पर मैं उन्हें राधा के साथ केलि करते देखती हूं। वही गिरिधर नागर मेरे प्रभु हैं और वह प्रेम के दाम मिलते हैं। मीराँ किस रूप में भगवान की उपासना करती थी वह इस पद में स्पष्ट हो गया है:—

और भी देखिये—

नित न्हाने से हरि मिले तो जलजन्तु होइ।
फल मूल खाये हरि मिले तो बाँदुड़ बाँदराइ।

दूध पिये हरि मिले तो बहुत वत्सवाला।
मीराँ कहे बिना प्रेम से ना मिले नन्दलाला।

यदि नित्य स्नान करने से हरि मिलें तो मैं जल-जन्तु हो जाऊँ। यदि फल-मूल खाने से वह सहज में प्राप्त हो सकें तो मैं वैसा ही करूं। दूध पीने से वह मिलें तो कितने बच्चे अब तक उनको प्राप्त कर गये होते। परन्तु मीराँ कहती हैं, कि बिना प्रेम के उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। प्रेम के देवता को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय प्रेम ही है। इस सत्य की अनुभूति यदि किसी को हुई तो वह महाप्रभु गौराँग के बाद मीराँ को ही हुई।

प्रेम-जीवना मीराँ ने माँ के कथनानुसार गिरिधारीलाल को अपना पति मान लिया। पत्र लिखकर दूरस्थ प्रिय की कुशलवार्ता जानने की प्रवृत्ति असाधारण नहीं। मीराँ के हृदय मे भी इस प्रकार की प्रवृत्ति का एक समय उदय हुआ था, कि उसकी मन की मन में ही रहीं—वह पत्र-व्यवहार क्योंकर कर सकती थी? कारण उसने स्वयं दिया है—

पतियाँ मैं कैसे लिखूं लिखही न जाई।
कलम धरत मोरे कर कम्पत हिरदै रहो घराई।
बात कहूँ मोहि बात न आवै नैन रहे झराई॥

पत्र किस प्रकार लिखूं—लिखा नहीं जाता। कलम पकड़ते ही हाथ काँपने लगते हैं, छाती में धड़कन पैदा हो जाती है। बोलना चाहती हूँ, पर बात ही नहीं निकलती; आँखों से आँसू झड़ने लगते हैं।

विरह-विह्वला प्रेम-प्राणा मीराँ अपने को सम्भाल में न रख

सकी। लाख कोशिश करने पर भी जब उससे लिखते नहीं बन पड़ा तब वह यह कह कर सन्तोष करती है—

"जिन के पिय परदेश बसत हैं लिखि लिखि भेजें पांती।
मेरो पिय मो माहिं बसत हैं कहूँ न आती जाती"

फिर—

"औराँ के पिय परदेस बसत हैं लिख लिख भेजें पाँती।
मेरा पिया मेरे हृदै बसत हैं गूंज कँ दिन राती।"

"जिसके प्रिय परदेश में रहते हैं वे पत्र लिख-लिख भेजा करें। मेरे प्रिय तो मुझी में वास करते हैं, कहीं आते जाते नहीं, मैं इसीसे निश्चिन्त हूँ। उन लोगों के पति परदेश में रहते हैं, इसीसे वे पत्र लिखा करती हैं। परन्तु मेरा पति तो मेरे हृदय में बसता है और गूंज-गूंज अपना सन्देश सुनाया ही करता है।"

प्रतीक्षा प्रेमानुभाव की सहचरी है। प्रतीक्षा प्रेम को सजीव करती है, उसमें उत्सुकता की लहर उठती रहती है जो प्रेमी को कभी भय, कभी आशङ्का, कभी प्रोत्साहन और कभी असीम आनन्द प्रदान करती है। प्रतीक्षा में प्रेम का जीवन है—मिलनमें उसका निर्वाण। मीराँ के प्रतीक्षा-सूचक पद बड़े ही मर्मस्पर्शी हैं-

'तारा गिन गिन रैन सिरानी'

× × ×

'गिनते-गिनते घिस गई रे मेरी आँगलियाँरी रेख।'

तारा गिन गिन कर रातें बिता रही हूँ। प्रतीक्षा की अवधि गिनते-गिनते उँगलियों की रेखाएँ भी मिट गईं। अब तक तुम

नहीं आये। इस प्रकार के सुन्दर भाव-उँगलियों की रेखाएँ घिस गईं कितना अनोखा है! ऐसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

विरहाग्नि की झुलसाने वाली बयार से गंग कवि मानसरोवर को सुखा सकते हैं विरह-व्यथा में व्याकुल कर तुलसीदास 'भ्रान्ति-भयहारी' राम से लता-पुष्प का सीता के भ्रम में आलिंगन करा सकते हैं, और बिहारीलाल 'हौं ही बौरी विरहवश, कै बौरो पुर ग्राम' कहला सकते हैं, पर आत्माभिव्यंजन की स्वभावोक्ति में जो चमत्कार होता है वह कोरी कल्पना के अलंकृत वाक्यविन्यास में नहीं। इसीलिये मीराँ को वियोगानुभूति के चित्रण में वह सफलता मिली है जो स्पर्द्धनीय है।

दरस बिनु दूखन लागै नैन।
जब से तुम बिछुरे मेरे प्रभुजी कबहुँ न पायो चैन।
सबद सुनत मेरी छतिया कम्पै मीठे लगे तुव बैन।
एक टक टकी पन्थ निहारूँ भई छः मासी रैन।
बिरह ब्यथा कासूं कहूँ सजनी बह गई करवत ऐन।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे दुःख-मेटन सुख-दैन।

× × × ×

घड़ी एक नहिं आवड़ै तुव दरसन बिनु मोय।
तुम तो मेरे प्राणजी कासूं जीवण होय।
दिवस तो खाय गमायो रे रैण गमाई सोय।
प्राण गँवायो झुरितां रे नैंण गँवाया रोय।
जो मैं ऐसा जानती रे प्रीत किये दुःख होय।
नगर ढिंढोरा फेरती रे प्रीत करौ जनो कोय।

पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ ऊबी मारग जोय।
मीराँके प्रभु कब रे मिलोगे तुम मिलियाँ सुख होय।

प्रियतम आने वाले हैं, आयेंगे या आ रहे हैं, ऐसा अनुमान जब सच्चे प्रेमी के हृदय में उठता है, तो वह आगन्तुक के स्वागत की तैयारी में लग जाता है। स्वागत के साज सभी एक-से नहीं सजते, बाह्याडम्बर दिखाने वाले प्रेमियोंकी संख्या कदाचित् अधिक निकल आवे। केशवदास तो अपनी विरहिणी नायिका से कौवेके लिये आभूषण बनवाने की प्रतिज्ञा कराते हैं। परन्तु मीराँ को अपना था ही क्या, उसने तो अपना सर्वस्व प्रेमके मार्ग में अर्पित कर दिया और निःस्व हो बैठी। प्रियतम के नाम की रटके सिवा उसके पास रह ही क्या गया था? वह स्वयं कहती है—

मेरे तो राम नाम दूसर न कोई।
दूसरो न कोई साधो सकल लोक जोई॥
भाई छोड्या बन्धु छोड्या सगा सोई।
साधु संग बैठ बैठ लोकलाज खोई॥
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई।
प्रेम-नीर सींच-सींच विष-बेल बोई॥
दधि मथ घृत काढ़ि लियो डार दई छोई।
राणो विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई॥
अब तो बात फैल पड़ी जाने सब कोई।
मीरां राम-लगन लगी होणी होय सो होई॥

अमरदेव के सिवा उसका अब संसार में कोई न था। रोनेवाले हंसनेवाले को देख कर और भी फूट-फूट कर रोते हैं। गरीब धनियों के महल और विलास-सामग्री को देख अपने भाग कोसते हैं। ठीक उसी प्रकार मीराँ को भी इस संसार से विरक्ति-सी हो गई। इसे देख कर उसके घाव हरे हो जाते थे। एक मति-गति के लोग एक साथ रहने में आनन्द का अनुभव करते हैं। इसीलिये मीराँको साधुओं की संगतमें शान्ति मिलती थी, क्योंकि सभी हरिके प्रेमी एक साथ जुट कर लगनके साथ चिर-प्रियतम की आराधनामें लग जाते थे।

हाँ, निःस्व मीराँ के पास अपने आराध्यके स्वागतको कुछ नहीं था। फिर वह मनकी अभिलाषा और प्रचलित परिपाटीका पालन क्योंकर कर सकती थी? भला जो प्रयत्न करते सर्वस्व निछावर कर सकती थी, वह मीराँ उस अलभ्यकी उपलब्धी में अपने आपको वार देने में कब बाज आ सकती थी? उसने प्रियतमकी आरती करना विचारा। यह उसकी अन्तिम आत्माहुति थी। वह आरती की सामग्रीका आयोजन करने लगी।

या तन को दिवला करूँ, मनसा की बाती हो।
तेल जगाऊँ प्रेम को, बलूं दिन राती हो॥

सचमुच उसने तन का दिया बनाया और मन की बत्ती बाँट कर उसमें रखी। बत्ती प्रेमके तेलमें भिगो दी गई और वह दिन रात जलती रही। इस प्रकार मनको प्रेमके मार्ग में 'आधा तर

और आधा जर' करके छोड़ा। मीराँको स्वयं प्रकाश मिला या नहीं, हम नहीं कह सकते; किन्तु उसके दीप्तमान दीपक के प्रकाशसे आज भी हमारा हृदय और हिन्दी-गगन प्रकाशित हो रहा है।

तो क्या मीराँकी प्रेम-प्रतीक्षा निष्फल हुई ? नहीं, वह सफल हुई, कदाचित् अधिक दिन उसे विरहाग्निमें झुलसना नहीं पड़ा। क्रमशः आकांक्षाकी आहुति देते-देते उसे चरम शान्तिकी प्राप्ति हुई। उसने अमर प्रियतमका साक्षात् दर्शन पाया। उसके प्रियतम ने उसे गलेसे लगाया। उस मिलनके अननुभूत आनन्दसे वह एक बार उल्लसित हो उठी। उसने अपने समस्त दुःख, समस्त लान्छनाको चुपचाप सह लिया और अन्तमें अपने जीवन को आदर्श करके छोड़ा—उसके लिये वह शान्ति और दृढ़ताका केन्द्र हुआ और हमारे लिये अनेक भावों की जननी।

मीराँकी प्रेम-वाणी

महिमा

हरि तुम हरो जनकी भीर ॥ टेक ॥
द्रौपती की लाज राखी, तुम बढ़ायो चीर ।
भक्त-कारण रूप नरहरि, धरयो आप शरीर ॥ १ ॥
हरिनकश्यप मारि लीन्हों, कियो बाहर नीर ।
दासि मीराँ लाल गिरधर, दुःख जहाँ तहँ पीर ॥ २ ॥

नाम

मेरे ही मन रामहि राम रटै रे ॥ टेक ॥
राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे ।
जनम जनमके खत जो पुराने, नामहि लेत फटै रे ॥ १ ॥
कनक-कटोरे अमृत भरियो, पीवत कौन नटै रे ।
मीराँ कह प्रभु हरि अविनाशी, तन मन ताहि पटै रे ॥ २ ॥

नाम

राम नाम मेरे मन बसियो, रसियो राम रिझाऊँ ए माय ॥ टेक ॥
मैं मँद-भागण करम अभागण, कीरत कैसे गाऊँ ए माय ॥ १ ॥
बिरह पिंजर की बाड़ सखी री, उठकरजी हुलसाऊँ ए माय ।
मनकूं मार सजूं सतगुरुसूं, दुरमत दूर गमाऊँ ए माय ॥ २ ॥
डंको नाम सुरतकी डोरी, कड़ियाँ प्रेम चढ़ाऊँ ए माय ।
प्रेमको ढोल बण्यो अति भारी, मगन होय गुण गाऊँ ए माय ॥ ३ ॥
तन करूँ ताल मन करूँ डफली, सोती सुरति जगाऊँ ए माय ।

निरत करूँ मैं प्रीतम आगे, तो प्रीतम-पद पाऊँ ए माय ॥ ४ ॥
मो अबला पर किरपा कीज्यो, गुण गोबिन्दका गाऊँ ए माय ।
मीराके प्रभु गिरधर नागर, रज चरणनकी पाऊँ ए माय ॥ ५ ॥

राग असावरी

बसो मेरे नैननमें नन्दलाल ॥ टेक ॥
मोहिनी मूरत साँवरी सूरति, नैना बने बिशाल ।
अधर-सुधा रस मुरली राजत, उर बैजन्ती माल ॥ १ ॥
छुद्रघण्टिका कटि—तट शोभित, नूपुर शब्द रसाल ।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई, भक्त-बछल गोपाल ॥ २ ॥

लीला

होरी खेलत हैं गिरधारी ॥ टेक ॥
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवती ब्रज नारी ॥ १ ॥
चन्दन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ बिहारी ।
भरि–भरि मूठ गुलाल लाल चहुं,,देत सबन पै डारी ॥२ ॥
छैल छबीले कान्ह सँग, स्यामा प्राण–पियारी ।
गावत चारु धमार राग तहँ, दै दै कल करतारी ॥ ३ ॥
फाग जु खेलत रसिक साँवरो, बाढ़्यो रस ब्रज भारी ।
मीरा प्रभु गिरिधर मिले, मनमोहन लाल बिहारी ॥ ४ ॥

गुरु-महिमा

मोही लागी लगन गुरु चरननकी ॥ टेक ॥
चरन बिना कछुवै नहीं भावै, जग माया सब सपननकी ॥ १ ॥
भव–सागर सूखि गयो है, फिकर नहीं मोहि तरनन की ।
मीराके प्रभु गिरधर नागर, आस वही गुरु सरनन की ॥ २ ॥

राग बागेश्री

भज ले रे मन गोपाल गुना ॥ टेक ॥
अधम तरे अधिकार भजन सूं, जोइ आये हरि सरना ।
अविश्वास तो साखि बनाऊँ, अजामील गणिका सदना ॥ १ ॥
जो कृपाल तन मन धन दीन्हों, नैन नासिका मुख रसना ।
जाको रचत मास दस लागे, ताहि न सुमिरो एक छिना ॥ २ ॥
बालापन सब खेल गंवायो, तरुण भयो जब रूप घना ।
बृद्ध भयो जब आलस उपज्यो, माया मोह भयो मगना ॥ ३ ॥
गज अरु गीधहु तरे भजन सूं, कोउ तर्‌यो नहीं भजन बिना ।
धनाभगत पीपामुनि सिवरी, मीरांकी हूँ करो गणना ॥ ४ ॥

सिखावन

मन रे परसि हरिके चरण ॥ टेक ॥
सुभग शीतल कमल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण ।
जिन चरण प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी-धरण ॥ १ ॥
जिन चरण ध्रुव अटल कीन्हें, राखि अपनी शरण ।
जिन चरण ब्रह्माण्ड भेद्यो, नख सिखा सिरी धरण ॥ २ ॥
जिन चरण प्रभु परसि लीनो, तरी गौतम धरण ।
जिन चरण काली नाग नाथ्यो, गोप-लीला-करण ॥ ३ ॥
जिन चरण गोवर्द्धन धार्‌यो, गर्व मघवा हरण ।
दासि मीराँ लाल गिरधर, अगम तारण तरण ॥ ४ ॥

सिखावन

राम नाम रस पीजै, मनुआं राम नाम रस पीजै ॥ टेक ॥
तज कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुनि लीजै ॥ १ ॥
काम क्रोध मद लोभ मोहकूं, बहा चित्तसे दीजै ।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, ताहिके रङ्गमें भीजै ॥ २ ।

राग असावरी

भज मन चरनकमल अविनासी ॥ टेक ॥
जेताई दीसे धरनि गगन बिच, तेताई सब उठि जासी ।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हें, कहा लिये करवत कासी ॥ १ ॥
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी ।
यो संसार चहर की बाजी, सांझ पड्याँ उठ जासी ॥ २ ॥
कहा भयो है भगवां पहन्यां, घर तज भये संन्यासी ।
जोगी होय जुगति नहीं जानी, उलट जनम फिर आसी ॥ ३ ॥
अरज करूं अबला कर जोरे, श्याम तुम्हारी दासी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटो यम की फांसी ॥ ४ ॥

चेतावनी

नहिं ऐसो जनम बारम्बार ॥ टेक ॥
क्या जानूं कछु पुन्य प्रगटे, मनुषां अवतार ॥ १ ॥
बढ़त पल पल घटत छिन छिन, चलत न लागे बार ।
विरछे के ज्यों पात टूटे, लगे नहीं पुनि डार ॥ २ ॥
भवसागर अति जोर कहिये, विषम ओखी धार ।

सुरतका नर बांध बेड़ा, बेग उतरो पार ॥ ३ ॥
साधु सन्ता ते गहन्ता, चतल कहत पुकार ।
दासि मीराँ लाल गिरधर, जीवणा दिन चार ॥ ४ ॥

दीनता

तुम सुनो दयाल म्हाँरी अरजी ॥ टेक ॥
भौसागर में बहो जात हूं, काढ़ो तो थांरी मरजी ।
जो संसार सगो नहिं कोई, साँचा सगा रघुबरजी ॥ १ ॥
मात पिता और कुटुम्ब कबीलो, सब मतलब के गरजी ।
मीराँकी प्रभु अरजी सुन लो, चरण लगवो थांरी मरजी ॥ २ ॥

दीनता

अब मैं शरण तिहारी जी, मोहिं राखौ कृपानिधान ॥ टेक ॥
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान ।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी बिमान ॥ १ ॥
और अधम तारे बहुतेरे, भाखत सन्त सुजान ।
कुब्जा नीच भीलनी तारी, जानै सकल जहान ॥ २ ॥
कहँ लग कहूं गिनती नहीं भावै, थकि रहे वेद पुरान ।
मीराँ कहै मैं शरण थांरो, सुनिये दोनों कान ॥ ३ ॥

राग भैरवी

छोड़ मत जाज्योजी महाराज ॥ टेक ॥
मैं अबला बल नांय गुसाईं, तुम्हीं मेरे सिरताज ।
मैं गुणहीन गुण नांय गुसाईं, तुम समरथ महाराज ॥ १ ॥
थांरी होय के किणरे जाऊँ, तुम्हीं हिवड़ारो साज ।
मीराँ के प्रभु और न कोई, राखो इबके लाज ॥ २ ॥

भजन

मेरा बेड़ा लगाय दीजो पार, प्रभुजी अरज करूं छूँ ॥ टेक ॥
या भव में मैं बहु दुख पायो, ऐसा सोग निवार।
अष्ट करम की तलब लगी है, दूर करो दुख पार ॥ १ ॥
यो संसार सब बह्यो जात है, लख चौरासी धार।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, आवागमन निवार ॥ २ ॥

भजन

थेतो पलक उघाड़ो दीनानाथ, मैं हाजिर नाजिर कद्की खड़ी ॥टेक॥
साजनियाँ दुशमन होय बैठ्या, सबने लगूं कड़ी।
तुम बिन साजन कोई नहीं है, डिगी नाव मेरी समंद अड़ी ॥१॥
दिन नहीं चैन रैन नहिं निदरा, सूखूं खड़ी खड़ी।
बान बिरहका लाग्या हिये में, भूलूं न एक घड़ी ॥ २ ॥
पत्थरकी तो अहिल्या तारी, बन के बीच पड़ी।
कहा बोझ मीराँ में कहिये, सौ पर एक घड़ी ॥ ३ ॥

राग भैरवी

मीराँ को प्रभु साची दासी बनाओ।
झूठे धन्धोंसे मेरा फन्दा छुड़ाओ ॥१॥
लूटे ही लेत बिबेक का डेरा।
बुधि बल यद्यपि करूं बहुतेरा ॥ २ ॥
हाय ! हाय ! नहीं कछु वश मेरा।
मरत हूं बिबश प्रभु धावो सवेरा ॥३॥

धर्म-उपदेश नितप्रति सुनती हूं।
मन कुचालसे भी डरती हूँ ॥ ४ ॥
सदा साधु सेवा करती हूँ।
सुमिरण ध्यानमें चित्त धरती हूँ ॥ ५ ॥
भक्ति मारग दासी को दिखलाओ।
मीराँ को प्रभु साची दासी बनाओ ॥६॥

भजन

सुण लीजो बिनती मोरी, मैं शरण गही प्रभु तोरी ॥ १ ॥
तुम तो पतित अनेक उधारे, भव सागर से तारे ॥ २ ॥
मैं सबका तो नाम न जानूं, कोई कोई नाम उचारे ॥ ३ ॥
अंबरीष सुदामा नामा, तुम पहुँचाये निज धामा ॥ ४ ॥
ध्रुव जो पांच वर्षके बालक, तुम दरश दिये घनश्यामा ॥ ५ ॥
धना भक्तका खेत जमाया, कबिराका बैल चराया ॥ ६ ॥
शबरीका जूठा फल खाया, तुम काज किये मनभाया ॥ ७ ॥
सदना औ सेना नाई, को तुम किन्हा अपनाई ॥ ८ ॥
करमाकी खिचड़ी खाई, तुम गणिका पार लगाई ॥ ९ ॥
मीराँ प्रभु तुमरे रंग राती, या जानत सब दुनिया ॥ १० ॥

प्रार्थना

प्यारो दरसन दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय ॥ टेक ॥
जल बिन कमल चन्द बिन रजनी, ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी।
आकुल ब्याकुल फिरूँ रैन दिन, बिरह कलेजो खाय ॥ १ ॥

दिवस न भूख नींद नहि रैना, मुखसूं कथत न आवै बैना।
कहा कहूं कछु कहत न आवै, मिलकर तपत बुझाय ॥ २ ॥
क्यूं तरसावो अन्तरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी।
मीराँ दासी जनम जनम की, पड़ी तुम्हारे पाय ॥ ३ ॥

राग काफी

अब तो निभायाँ सरेगी, बाँह गहे की लाज ॥ टेक ॥
समरथ सरन तुम्हारी सइयाँ, सरब सुधारण काज।
भवसागर संसार अपरबल, जामें तुम हो जहाज ॥ १ ॥
निरधारा आधार जगत गुरु, तुम बिन होय अकाज ॥ २ ॥
जुग जुग भीर हरी भक्तन की, दीनी मोक्ष समाज ॥ ३ ॥
मीराँ सरण गही चरणन की, लाज रखो महाराज ॥ ४ ॥

राग बागेश्री

साजन घर आवो मीठा बोला ॥ टेक ॥
कबकी खड़ी मैं पन्थ निहारूँ, थाँरी आयाँ होसी भला ॥ १ ॥
आवो निशङ्क शङ्क मत मानो, आयाँ ही सुक्ख रहेला ॥ २ ॥
तन मन वार करूँ न्योछावर, दीज्यो श्याम मो हेला ॥ ३ ॥
आतुर बहुत बिलम्ब मत कीज्यो, आयाँ ही रंग रहेला ॥ ४ ॥
तेरे कारन सब रंग त्यागा, काजल तिलक तमोला ॥ ५ ॥
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, कर धर रही कपोला ॥ ६ ॥
मीराँ दासी जनम जनम की, दिल की घूंडी खोला ॥ ७ ॥

राग असावरी

रमैया मैं तो थारे रंग राती ॥ टेक ॥
औरोंके पिया परदेस बसत हैं, लिख लिख भेजें पाती ।
मेरा पिया मेरे हृदय बसत है, रोल करूँ दिन राती ॥ १ ॥
चूवा चोला पहिरि सखीरी, मैं झुरमट रमवा जाती ।
झुरमटमें मोहि मोहन मिलिया, घाल मिली गलबांथी ॥ २ ॥
और सखी मद पी पी माती, मैं बिन पीयाँ ही माती ।
प्रेम-भठीको मैं मद पीयो, छकी फिरूँ दिन राती ॥ ३ ॥
सुरत निरतको दिवलो जोयो, मनसा पूरन बाती ।
अगम घाणिको तेल सिंचायो, बाल रही दिन राती ॥ ४ ॥
जाऊँनी पीहरिये, जाऊंनी सासरिये, हरिसूँ सैन लगाती ।
मीरांके प्रभु गिरधर नागर, हरि-चरणां चित लाती ॥ ५ ॥

भजन

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हारो काँइ करलेसी,
म्हे तो गुण गोविन्दका गास्याँ हो माई ॥टेक॥
राणाजी रूठ्यो तो वाँरो देश रखासी,
हरिजी रूठ्याँ किठे जास्याँ हो माई ॥ १ ॥
लोक लाजकी काण न मानाँ,
निरभै निसाण, घुरास्याँ हो माई ॥ २ ॥
राम-नामकी भयाभ चलास्याँ,
भवसागर तिरजास्याँ हो माई ॥ ३ ॥

मीरां शरण साँवले गिरधरकी,
चरण-कमल लपटास्याँ हो माई ॥ ४ ॥

राग भैरवी

आली ! साँवरेकी दृष्टि मानो प्रेम की कटारी है ॥ टेक ॥
लागत बेहाल भई, तनकी सुध बुद्ध गई ।
तन मन सब व्यापो प्रेम, मानो मतवारी है ॥ १ ॥
सखियाँ मिलि दोई चारी, बावरी-सी भई न्यारी ।
हौं तो वाको नीके जानौ, कुञ्जनको बिहारी है ॥ २ ॥
चन्दनको चकोर चाहै, दीपक पतंग दाहै ।
जल बिना मीन जैसे, तैसे पीत प्यारी है ॥ ३ ॥
बिनती करौं हे श्याम, लागूं मैं तुम्हारे पाँव ।
मीरां प्रभु ऐसी जानो, दासी तुम्हारी है ॥ ४ ॥

राग असावरी

मीरां मगन भई हरिके गुण गाय ॥ टेक ॥
साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीरां हाथ दिया जाय ।
न्हाय धोय जब देखन लागी, सालिगराम गई पाय ॥ २ ॥
जहर का प्याला राणा भेज्यो, अमृत दीन्ह बनाय ।
न्हाय धोय जब पीवन लागी, हो गई अमर अँचाय ॥ २ ॥
सुली सेज राणाने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय ।
साँझ भई मीरा सोवन लागी, मानो फूल बिछाय ॥ ३ ॥
मीरांके प्रभु सदा सहाई, राखो विघ्न हटाय ।
भजन भावमें मस्त डोलती, गिरिधरपै बलि जाय ॥ ४ ॥

राग माड

माई म्हे गोविन्द लीनो मोय ॥ टेक ॥
कोई कहै सस्तो कोई कहै महगों, लीनो तराजू तोल ॥ १ ॥
कोई कहै घरमें कोई कहै वनमें राधाके संग किलोल ॥ २ ॥
मीरांके प्रभु गिरधर नागर, आवत प्रेमके मोल ॥ ६ ॥

राग सारंग

पायो जी म्हे तो राम रतन धन पायो ॥ टेक ॥
वस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु, किरपा कर अपनायो ॥ १ ॥
जनम जनम की पूँजी पाई, जगमें सभी खोवायो।
खरचै नहीं कोई चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो ॥ २ ॥
सतकी नाव खेवरिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
मीरांके प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस पायो ॥ ३ ॥

भजन

अब तौ हरी नाम लौ लागी ॥ टेक ॥
सब जगको यह माखन-चोरा, नाम धर्‌यौ बैरागी ॥ १ ॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कहं छोड़ी सब गोपी।
मूँड़ मुड़ाई डोरी कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी ॥ २ ॥
मात जसोमती माखन कारन, बाँधे जाके पाँव।
श्याम किशोर भयो नव गोरा, चैतन्य जाको नाँव ॥ ३ ॥
पीताम्बरको भाव दिखावे, करि कोपीन कसै।
गौर कृष्णकी दासी मीरां, रसना कृष्ण बसै ॥ ४ ॥

भजन

तेरा कोई नहिं रोकनहार, मगन होय मीरां चली ॥ टेक ॥
लाज-सरम कुलकी मरजादा, सिरसे दूर करी ।
मान अपमान दोऊं धर पटके, निकसी हूं ज्ञान गली ॥ १ ॥
ऊँची अटरिया लाल किंवड़िया, निरगुण-सेज बिछी ।
पचरंगी झालर शुभ सोहैं, फूलन फूल कली ॥ २ ॥
बाजूबन्द कडूला सोहै, सेन्दुर माँग भरी ।
सुमिरन थाल हाथमें लीन्हों, शोभा अधिक भली ॥ ३ ॥
सेज सुखमणाँ मीरा सोवै, शुभ है आज घरी ।
तुम जावो राणा घर अपने, मेरी तेरी नाहिं सरी ॥ ४ ॥

भजन

नैना लोभी रे बहुरी सके नहिं आय ॥ टेक ॥
रोम-रोम नखसिख सब निरखत, ललकि रहे ललचाय ॥ १ ॥
मैं ठाढ़ी गृह अपने री, मोहन निकसे आय ।
बदन चन्द परकासत हेली, मन्द-मन्द मुसकाय ॥ २ ॥
लोक कुटुम्बी बरजि बरजहिं बतियाँ कहत बनाय ।
चंचल निपट अटक नहीं मानत, पर-हथ गये बिकाय ॥ ३ ॥
भली कहो कोई बुरी कहौमैं, सब लई शीस चढ़ाय ।
मीराँ प्रभु गिरिधरनलाल बिनु, पल भर रह्यो न जाय ॥ ४ ॥

भजन

ऐसे पिये जाने न दीजै हो ॥ टेक ॥
चलो, री सखी ! मिली राखिये, नैननि रस पीजै हो ।

श्याम सलोनो, साँवरो मुख देखत जीजै, हो ॥
जोई जोई भेषसों हरि मिलें, सोइ सोइ कीजै हो ।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, बड़ भागन रीजै हो ॥

भजन

ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी ॥ टेक ॥
तोहि देखे बिन कल न परत है, तलफि तलफि जिय जासी ॥ १ ॥
तेरे खातिर जोगिन हूँगी, करबत लूंगी कासी ॥ २ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, चरण कंवल की दासी ॥ ३ ॥

भजन

बरजी मैं काहुकी नहिं रहूं ॥ टेक ॥
सुनोरी सखी तुमसों या मनकी, साँची बात कहूँ ॥ १ ॥
साधु-संगति कर हरि-सुख लेऊँ, जगते हौं दूरि रहूँ ।
तन धन मेरो सबही जावौ, भल मेरो शीस लहूँ ॥ २ ॥
मन मम लाग्यो सुमरन सेती; सबको मैं बोल सहूँ ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सतगुरु-शरण गहूं ॥ ३ ॥

भजन

तू नागर नन्द-कुमार, तोसों लाग्यो नेहरा ॥ टेक ॥
मुरली तेरी मन हर्यौ, बिसर्यौ गृह-ब्योहार ॥ तू नागर० ॥१॥
जबते श्रवननि धुनि परी, अंगना न सुहाई ।
पारधि ज्यों चूकै नहीं, मृगी बेधि दइ आई ॥ तू नागर० ॥२॥
पानी पीर न जानई ज्यों, मीन तलफि मरि जाइ ।
रसिक मधुपके मरमको नहिं, समुझत कमल सुभाइ ॥तू नागर० ॥३॥

दीपकको जो दया नहीं, उड़ि-उड़ि मरै पतंग ।
मीराँ प्रभु गिरिधर मिले, जैसे पानी मिलि गयो रंग ॥तूनागर०॥४॥

भजन

मैं गिरिधर के घर जाऊँ ।
गिरिधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ ॥ टेक ॥
रैन पड़ै तब ही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ ।
रन-दिना वाके संग खेलूं; ज्यों त्यों ताहि रिझाऊँ ॥ १ ॥
जा पहिरावै सोई पहिरूं, जो दे सोइ खाऊँ ।
मेरी उनकी प्रीति पुरानी, उन बिन पल न रहाऊँ ॥ २ ॥
जहँ बैठावै; तितहूं बैठूं , बेचै तो बिक जाऊँ ।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, बार-बार बलि जाऊँ ॥ ३ ॥

भजन

श्रीगिरिधर आगे नाचूँगी ॥ टेक ॥
नाचि-नाचि पिय रसिक रिझाऊँ, प्रेमी जनको जाचूँगी ।
प्रेम-प्रीतिके बाँधि घूंघरू, सुरत की कछनी काछूंगी ॥ १ ॥
लोक-लाज कुल की मरजादा, यामें एक न राखूँगी ।
पीयाके पलंगा जा पौढूँगी, मीराँ हरि-रङ्ग राचूंगी ॥ २ ॥

जभन

सूरत दीनानाथसे लगी, तूं तो समझ सुहागण सुरता नार ॥टेक॥
लगनी लहँगो पहर सुहागण, बीतो जाय बहार ।
धन जोबन है पावणा री, मिलै न दूजी बार ॥ १ ॥

राम नामको चुड़लो पहिरो, प्रेमको सुरमो सार।
नकबेसर हरि नाम की री, उतर चलोनी परलो पार॥
ऐसे बरको क्या बरूं, जो जन्मे और मर जाय।
बर बरिये एक सांवरो री, मेरो चुड़लो अमर हो जाय॥ ३॥
मैं जान्यो हरि मैं ठग्यो री, हरि ठग ले गयो मोय।
लख चौरासी मोरचा री, छिनमें गेप्याछै बिगोय॥ ४॥
सुरत चली जहाँ मैं चली री, कृष्ण नाम झनकार।
अविनाशीकी पोल पर जी, मीरां करै छै पुकार॥ ५॥

भजन

राणाजी म्हांरी प्रीति पुरबली मैं काईं करूं॥ टेक॥
राम नाम बिन नहीं आवड़े, हिवड़ो झोला खाय।
भोजनिया नहिं भावै म्हांने, नींदड़ली नहिं आय॥ १॥
विषको प्याला भेज्यो जी, जाओ मीरां पास।
कर चरणामृत पी गयो, म्हांरे गोविन्द रे विश्वास॥ २॥
विषको प्यालो पी गई जो, भजन करै राठौर।
थारी मारी न मरूं, म्हांरो राखणवालो और॥ ३॥
छापा तिलक लगाइया जी, मनमें निश्चै धार।
रामजी काज संवरिया जी, म्हांने भावैं गरदन मार॥ ॥
पेटयां बासक भेज्यो जी, यो छै मोती डारो हार।
नाग गलेमें पहिरियो, म्हांरे महलां भयो उजियार॥ ५॥
राठौड़ारी धीयड़ी जी, सीसोद्याँके साथ।
ले जाती बैकुण्ठको, म्हांरी नेक न मानी बात॥ ६

मीराँ दासी श्यामकी जी, श्याम गरीबनिवाज ।
जन मीराँकी राखज्यो कोई, बांह गहेकी लाज ॥ ७ ॥

विरह

हे ह्री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाने कोय ॥ टेक ॥
सूली ऊपर सेज हमारी, सोणो किस विधि होय ।
गगन-मंडल पर सेज पियाकी, किस विधि मिलणो होय ॥ २ ॥
घायल की गति घायल जानै, जो कोई घायल होय ।
जौहरकी गति जौहरि जानै, दूजा न जाने कोय ॥ २ ॥
दरदकी मारी बनबन डोलूं, वैद मिल्यो नहिं कोय ।
मीराँकी प्रभु पीर मिटै जद वैद साँवलिया होय ॥ ३ ॥

राग सारंग

म्हारी सुध ज्यूँ जानो ज्यूँ लीजोजी ॥ टेक ॥
पल पल भीतर पंथ निहारू, दर्शन म्हाँने दीजोजी ॥ १ ॥
मैं तो हूं बहु औगुणहारी, औगण चित मत दीजोजी ॥ २ ॥
मैं तो दासी थाँरे चरणकमल की, मिल बिछुरन मत कीजोजी ॥३॥
मीराँ तो सतगुरुजी शरणे, हरि चरणाँ चित दीजोजी ॥ ४ ॥

राग वागेश्री

घड़ी एक नहिं आवड़ै, तुम दरशण बिन मोय ।
तुम हो मेरे प्राणजी, कैसूँ जीवण होय ॥ टेक ॥
धान न भावै नींद न आवै, विरह सतावै मोय ।
घायल सी घूमत फिरूं रे, मेरा दरद न जानै कोय ॥ १ ॥

दिवस तो खाय गमाइय रे, रैण गमाई सोय ।
प्राण गमाया झूरताँ रे, नैण गमाया रोय ॥ २ ॥
जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीत किये दुख होय ।
नगर ढिंढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय ॥ ३ ॥
पंथ निहारूँ डगर बुहारूं, ऊभी मारग जोय ।
मीरांके प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियां सुख होय ॥ ४॥

राग बिलावल

हरि बिनु क्यों जीऊ री माय ॥ टेक ॥
हरि कारन बौरी भई, जस काठही घुन खाय ॥ १ ॥
औषध मूल न संचरे, मोंहि लागौ बोराय ।
कमठ दादुर बसत जल मह, जलहिं ते उपजाय ॥ २ ॥
हरी ढूँढ़न गई बन बन, कहुँ मुरली धुन पाय ।
मीराँके प्रभु लाल गिरधर, मिलि गयो सुखदाय ॥ ३ ॥

भजन

सखी मेरी नींद नसानी हो ॥ टेक ॥
पियाके पन्थ निहारते सब रैन बिहानी हो ॥ १ ॥
सखियन मिलकर सीख दई, मन एक न मानी हो ।
बिन देखे कल न परे, जिय ऐसी ठानी हो ॥ २ ॥
अंग छीन व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो ।
अन्तर वेदन बिरहकी कोई, पीर न जानी हो ॥ ३ ॥
ज्यों चातक घनकूँ रटे, मछली जिमि पानी हो ।
मीराँ व्याकुल विरहिणी, सुध बुध बिसरानी हो ॥ ४ ॥

राग असावरी

दरस बिन दुखन लागै नैन ॥ टेक ॥
जबसे तुम बिछुरे प्रभुजी, कबहुं न पायो चैन ॥ १ ॥
शब्द सुनत मेरी छतियाँ कम्पै, मीठे लागे बैन।
एक-टकटकी पंथ निहारूँ, भई छमासी रैन ॥ २ ॥
बिरह-बिथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गई करवत नैन।
मीराँके प्रभु कब रे मिलोगे, दुःखमेटन सुखदैन ॥ ३ ॥

राग बिलावल

माई म्हाँरी हरी न बूझी बात ॥ टेक ॥
पिंडमेंसे प्राण पापी, निकसत क्यूँ नहिं जात ॥ १ ॥
रैन अन्धेरी बिरह घेरी, तारा गिणत निसि जाता।
ले कटारी कण्ठ चीरूँ, करूँगी अपघात ॥ २ ॥
पट न खोल्या मुखाँ न बोल्या, साँझ लग परभात।
अबोलनामें अवधि बीती, काहेकी कुसलात ॥ ३ ॥
सुपनमें हरी दरस दीन्हों, मैं न जाण्यो हरी जात।
नैन म्हाँरा उघड़ आया, रही मन पछतात ॥ ४ ॥
आवन आवन होय रह्यो रे, नहिं आवनकी बात।
मीराँ व्याकुल विरहनी रे, बाल ज्यूँ बिललात ॥ ५ ॥

राग काफी

घर आँगन न सुहावे, पिया बिन मोहि न भावै ॥ टेक ॥
दीपक जोय कहा करूं सजनी ! हरि परदेश रहावे।

सूनी सेज जहर ज्यूं लागे, सिसक जिय जावे ॥
नयन निद्रा नहिं आवे ॥ १ ॥
कबकी खड़ी मैं मग जोऊँ, निस दिन बिरह सतावे।
कहा कहूं कछु कहत न आवे, हिबड़ो अति अकुलावे ॥
हरि कब दरस दिखावे ॥ २ ॥
ऐसो है कोई परम सनेही, तुरत संदेशो लावे।
वा बिरियाँ कब होसी मुझको, हरि हँस कण्ठ लगावे ॥
मीराँ मिलि होरी गावे ॥ ३ ॥

भजन

पिया, तैं कहाँ गयो नेहरा लगाय ॥ टेक ॥
छाँड़ि गयो अब कहाँ बिसासी, प्रेमकी बाती बराय ॥ १ ॥
बिरह-समुद्रमें छाँड़ि गयो, पिव नेहकी नाव चलाय ॥ २ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, तुम बिनु रह्यो न जाय ॥ ३ ॥

भजन

बंसीबारा आजो म्हारे देस, थारी साँवरी सुरत व्हालो बेष ॥टेक॥
आऊँ-आऊँ कर गया साँवरा, कर गया कौल अनेक।
गिनते-गिनते घिस गई म्हारी, आंगलियारी रेख ॥ १ ॥
मैं बैरागिणि आदिकी जी, थाँरे म्हारे कदको सन्देस।
बिन पाणी बिन साबुन साँवरा, होय गई धोय सफेद ॥ २ ॥
जोगिण होय जङ्गल सब हेरूं, तेरा नाम न पाया भेस।
तेरी सुरतके कारणें, म्हें धर लिया भगवाँ भेस ॥ ३ ॥

मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, घूंघरवाला केस ।
मीराँके प्रभु गिरिधर मिलियाँ, दूनों बढ़ो सनेस ॥ ४ ॥

भजन

गली तो चारों बन्द हुई, मैं कैसे मिलूं हरिसे जाय ॥
ऊँची नीची राह रपटीली, पांव नहीं ठहराय ।
सोच-सोच पग धरूं जतनसे, बार-बार डिग जाय ॥ १ ॥
ऊँचा नीचा महल पियाका, म्हांस्यूं चढ्या न जाय ।
पिया दूर पंथ म्हांरो झीणो, सुरत झकोला खाय ॥ २ ॥
कोस-कोसपर पहरा बैठ्या, पैंड पैंड बटमार ।
हे विधना कैसी रच दीन्ही; दूर बसाहो म्हारो गाम ॥ ३ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, सत गुरु दई बताय ।
जुगन-जुगनसे बिछुड़ी मीराँ, घरमें लीन्हीं लाय ॥ ४ ॥

भजन

नातो नामको जी महाँस्यूं, तनको न तोड्यो जाय ॥ टेक ॥
पाना ज्यूं पीली पड़ी रे, लोग कहे पिंड रोग ।
छाने लांघण मैं किया रे, राम मिलन के योग ॥ १ ॥
बाबल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हारी बाँह ।
मूरख बैद मरम नहिं जाणैं, कसक कलेजे मांह ॥ २ ॥
जाओ बैद घर आपणे रे, म्हारो नाम न लेय ।
मैं तो दाझी बिरह की रे, काहे कूं औषध देय ॥ ३ ॥
मांस गल गल छीजियो रे, करक रह्या गल आय ।
आँगलियांरी मूंदरी म्हांरे, आवण लागी बाँह ॥ ४ ॥

रह रह पापी पपीहरा रे, पिवको नाम न लेय ।
जे कोई बिरहण साम्हले तो, पिव कारण जिव देय ॥ ५ ॥
छिन मन्दिर छिन आंगणे रे, छिन छिन ठाढ़ी होय ।
घायल-सी झूमूँ खड़ी म्हारी, व्यथा न बुझै कोय ॥ ६ ॥
काढ़ कलेजो मैं धरूं रे, कौव्वा तूँ ले जाय ।
ज्याँ देशाँ म्हारो हरि बसे रे, वाँ देखत तूं खाय ॥ ७ ॥
म्हारो नातो राम को रे, और न नातो कोय ।
मीराँ व्याकुल बिरहणी रे, हरि दर्शन दीज्यो मोय ॥

राग भैरवी

आली री मेरे नैनन बान पड़ी ॥ टेक ॥
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी ॥ १ ॥
कबकी ठाढ़ी पंथ निहारूं, अपने भवन खड़ी ॥ २ ॥
कैसे प्रान पिया बिन राखूं, जीवन मूल जड़ी ॥ ३ ॥
मीराँ गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहै बिगड़ी ॥ ४ ॥

राग भैरवी

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ॥ टेक ॥
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बन्धु, आपनो न कोई ॥ १ ॥
छोड़ दई कुलकी कान, का करिहैं कोई ।
सन्तन ढिग बैठि बैठि, लोक-लाज खोई ॥ २ ॥
चुनरीके किये टूक, ओढ़ लीन्ही लोई ।
मोती मूंगे उतार, वन माला पोई ॥ ३ ॥

अँसुवन-जल सींच सींच, प्रेम बेलि बोई ।
अब तो बेलि फैल गई, होनी हो सो होई ॥ ४ ॥
दूधकी मथनियाँ बड़े प्रेम से बिलोई ।
माखन जब काढ़ि लियो, छाछ पिये कोई ॥ ५ ॥
आई मैं भगति काज, जगत देख मोही ।
दासि मीराँ गिरधर प्रभु, तारो अब मोही ॥ ६ ॥

राग असावरी

लाला मैं बैरागण हूंगी ॥ टेक ॥
जिन भेषाँ म्हारो साहिब रीझे, सोई भेष धरूँगी ॥ १ ॥
शील सन्तोष धरूँ घर भीतर, समता पकड़ रहूंगी ।
जाको नाम निरंजन कहिये, ताको ध्यान धरूंगी ॥ २ ॥
गुरुके ज्ञान रंगू तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूंगी ।
प्रेम-प्रीतसूं हरि गुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूंगी ॥ ३ ॥
या तनकी मैं करूँ कीगँरी, रसना नाम कहूंगी ।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, साधां संग रहूंगी ॥ ४ ॥

राग भैरवी

श्याम म्हाँने चाकर राखोजी, गिरधारीलाल चाकर राखोजी ॥
चाकर रहसूं, बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं ।
वृन्दाबनकी कुञ्ज गलिनमें, गोविन्द का गुण गासूं ॥ १ ॥
चाकरीमें दरसन पाऊँ, सुमिरत पाऊँ खरची ।
भाव भगति जागिरी पाऊँ, तीनों बातों सरसी ॥ २ ॥

मोर-मुकुट पीताम्बर सोहै, गल वैजन्ती माला।
वृन्दाबनमें धेनु चरावै, मोहन मुरली वाला ॥ ३ ॥
ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ, बिच बिच राखूं बारी।
सांवरियाके दरशन पाऊँ, पहिर कुसुं सारी ॥ ४ ॥
जोगी आया जोग करन कूं, तप करने सन्यासी।
हरी भजनको साधू आये, वृन्दाबन के बासी ॥ ५ ॥
मीराँके प्रभु गहिर गम्भीरा, हृदै रहोजी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दीज्यो, प्रेम-नदीके तीरा ॥ ६ ॥

भजन

जोगी मत जा मत जा; पाँव परूँ मैं तेरी ॥ टेक ॥
प्रेम–भक्तिको पैड़ों हि न्यारो, हमकूं गैल बता जा ॥ १ ॥
अगर चँदन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा ॥ २ ॥
जल बल भई भस्मकी ढेरी, अपने अंग लगा जा ॥ ३ ॥
मीरां कहै प्रभु गिरधरनागर, जोत में जोत मिला जा ॥ ४ ॥

भजन

जावा दे, री जावा दे, जोगी किसका मीत ॥ टेक ॥
सदा उदास मोरी सजनी, निपट अटपटी रीत ॥ १ ॥
बोलत बचन मधुर अति प्यारे, जोरत नाहीं प्रीत ॥ २ ॥
हूँ जाणूं या पार निभैगी, छोड़ चला अधबीच ॥ ३ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, प्रेम -पियासा मीत ॥४ ॥

भजन

जोगिया तू कबरे, मिलैगो आई ॥ टेक ॥
तेरे कारण जोग लियो है, घर घर अलख जगाई ॥ १ ॥

दिवस न भूख रैन नहिं निद्रा, तुम बिन कछु न सुहाई ।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, मिलिके तपति बुझाई ॥ २ ॥

भजन

न भावै थारो देसड़लो जी, रूड़ो रूड़ो ॥ टेक ॥
हरि की भगति करै नहिं कोई, लोग बसें सब कूड़ो ॥ १ ॥
पाटी मांग उतारि धरूंगी, ना पहिरूँ कर चूड़ो ।
मीराँ हठीली कह सन्तन सों, पायो छै अनंद पूरो ॥ २ ॥

राग काफी

नन्दनन्दन बिलमाई, बदराने घेरी माई ॥ टेक ॥
इत घन गरजे, उत घन गरजे, चमकत बिज्जु सवाई ॥ १ ॥
उमड़-घुमड़ चहुँ दिशिसे आया, पवन चले पुरवाई ।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल शब्द सुनाई ॥
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, चरण-कमल चित लाई ॥ २ ॥

भजन

इण सखरियांरी पाल मीराँबाई साँपड़े ॥ टेक ॥
साँपड़ किया असनान सूरज सामी जप करे ।
होय बिरंगी नार, डगराँ बिच क्यूं खड़ी ॥ १ ॥
काँई थारो पीहर दूर घराँ सासू लड़ी ।
चल्यो जारे असल गुंवार तनै मेरीके पड़ी ॥ २ ॥
गुरु म्हारा दीनदयाल हीराँरा पारखी ।
दियो म्हाने ज्ञान बताय, संगत कर साधरी ॥ ३ ॥
खोई कुलकी लाज मुकुन्द थाँरे कारणे ।
बेगही लीज्यो सम्हाल, मीराँ पड़ी बारणे ॥ ४ ॥

राग काफी

फागुनके दिन चार, होलीके खेल मनारे॥ टेक ॥
बिन करताल पखावज बाजै, अनहद्की झनकार।
बिन सुर राग छतिसों गावे, रोम रोम रणकार ॥ १ ॥
शील सँतोषकी केशर घोली, प्रेम-प्रीति पिचकार।
उड़त गुलाल लाल भये बादल, बरसत रँग अपार ॥ २ ॥
घरके सब पट खोल दिये हैं, लोक लाज सब डार।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, चरण-कमल बलिहार ॥ ३ ॥

राग सारंग

चलो अगनके देश काल देखत डरे।
वहाँ मेरा प्रेमका हौज, हंस केली करे ॥ १॥
ओढ़न लज्जा चीर, धीरजको घाँघरो।
छिमता कांकण हाथ सुमतको मूँदरो ॥ २ ॥
पूँची है विश्वास चूड़ी चित्त ऊजलो।
दिल दुलरी दरियाव साँचको दोवड़ो ॥ ३ ॥
दाँता अमृत मेख दयाको बोलणो।
उबटन गुरूको-ज्ञान ध्यानको धोवणो ॥ ४ ॥
कान अखोरा ज्ञान जुगतको झूठणो।
बेसर हरिको नाम काजल है धरमको ॥ ५ ॥
जौहर शील सन्तोष निरतको घूँघरो।
बिंदली गज मणि-हार तिलक हरि-प्रेमको ॥ ६ ॥

सज सोला सिणगार पहिर लीनी राखड़ी ।
साँवरिये सूँ प्रीति, औराँसे आखड़ी ॥ ७ ॥
पतिवरताकी सेज प्रभुजी पधारिया ।
गावे मीराबाई दासी कर राखिया ॥ ८ ॥

भजन

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत ॥ टेक ॥
आसण मांड़ अडिग होय बैठा, याही भजनकी रीत ॥ १ ॥
मैं तो जाणूं जोगी संग चलेगा, छाड़ गयो अधबीच ॥ २ ॥
आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत ॥ ३ ॥
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, चरणन आवे चीत ॥ ४ ॥

भजन

म्हारे जन्म मरणको साथी, थांने नहिं बिसरूं दिनराती ॥ टेक ॥
तुम देख्याँ बिन कल नपड़त है, जानत मेरी छाती ।
ऊँची चढ़ चढ़ पन्थ निहारूं, रोय रोय अंखियाँ राती ॥ १ ॥
यो संसार सकल जग झूँठो झूँठा कुल रा नाती ।
दोउ कर जोड्याँ अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती ॥ २ ॥
यो मन मेरो बड़ो हरामी ज्यूँ मदमातो हाथी ।
सत्गुरु हाथ धरयो सिर ऊपर आँकुश दे समझाती ॥ ३ ॥
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित राती ।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती ॥ ४ ॥

भजन

अब मीरां मान लीज्यो म्हारी, होजी थाने सखियां बरजे सारी ॥ टेक
राजा बरजै राणी बरजै, बरजै सबै परिवारी ।
कुंवर पाटवी सो भी बरजै, और सहेल्याँ सारी ॥ १ ॥
शीश फूल सिर ऊपर सोवै, बिंदली शोभा भारी ।
गले गुँजारी करमें कङ्कण, नेवर पहिरे भारी ॥ २ ॥
साधनके ढिग बैठ बैठके, लाज गमाई सारी ।
नित प्रति उठ नीच घर जावो, कुलकूं लगावो गारी ॥ ६ ॥
बड़ा घरांकी कुहावो, नाचो दे दे तारी ।
बर पायो हिन्दुवाणी सूरज, इब दिलमें कहा धारी ॥ ४ ॥
ताप्यो पीहर सासरो ताप्यो, नाय मोसाली तारी ।
मीरांने सत्गुरुजी मिलिया चरण कमल बलिहारी ॥ ५ ॥

भजन

मेरो मन हरिसूं जोर्‌यो, हरिसुं जोर सकलसुं तोर्‌यो ॥ टेक ॥
मेरी प्रीत निरन्तर हरिसूं ज्यूँ खेलत बाजीगर गोर्‌यो ।
जब मैं चली साथके दरशण, तब राणो मारणकूँ दोर्‌यो ॥ १ ॥
जहर देनको घात बिचारी निरमल जलमें ले विष घोर्‌यो ।
जब चरणोदक सुण्यो सरबण, राम भरोसे मुखमें ढोर्‌यो ॥ २ ॥
नाचन लागी तब घूँघट कैसो, लोक लाज तिणका ज्यूँ तोर्‌यो ।
नेकी बदी हूँ सिर पर धारी, मनहस्ती अंकुश दे मोर्‌यो ॥ ३ ॥
प्रगट निसान बजाय चली मैं, राणा राव सकल जग जोर्‌यो ।
मीराँ सकल धणीके शरणे, कहा, भयो भूपति मुख मोरयो ॥ ४ ॥

भजन

तूँ मत बरजे माइड़ी, साधाँ दरशण जाती।
राम नाम हिरदे बसै, माहिले मन माती ॥ टेक ॥
माइ कहे सुण धीहड़ी, कहे गुण फूली।
लोग सोवै सुख नींदड़ी, थूं क्यूं रैणज भूली ॥ १ ॥
गैली दुनियां बावली, जाकूं राम न भावै।
ज्यांहे हिरदे हरि बसे, त्या कूं नींद न आवे ॥ २ ॥
चौबारयांकी बावड़ी, ज्याकूं नीरन पीजे।
हरि नाले अमृत झरे, ज्यांकी आस करीजे ॥ ३ ॥
रूप सुरङ्गा रामजी, मुख निरखत जीजे।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अपणी कर लीजे ॥ ४ ॥

भजन

राणाजी थे क्यांने राखो मोसूं बैर ॥ टेक ॥
राणाजी म्हारे ऐसा लगत है ज्यूं बिरछनमें कैर ॥ १ ॥
मारू धर मेवाड़ मेड़तो, त्याग दियो थारो शहर ॥ २ ॥
थारे रूस्यां राणा कुछ नहिं बिगड़े, अब हरि किन्हीं म्हेर ॥ ३ ॥
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, हठकर पी गई जहर ॥ ४ ॥

भजन

राणाजी म्हाने या बदनामी लगे मीठी ॥ टेक ॥
कोई निंदो कोई विंदो, मैं चलूंगी चाल अनूठी ॥ १ ॥
साँकड़ी गलीमें सत्गुरु मिलिया, क्यूं कर फिरूं अपूठी ॥ २ ॥

सतुगुरुजी सूँ बातज करताँ, दुरजन लोगांने दीठी ॥ ३ ॥
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो या अंगीठी ॥ ४ ॥

भजन

रामकी दीवानी मेरो दरद न जाने कोई ॥ टेक ॥
घायलकी गति घायल जाने, जो कोई घायल होई ।
शेष नाग पै सेज पियाकी, किस बिध मिलना होई ॥ १ ॥
दरदकी मारी बन बन डोलूँ, बैद मिला नहिं कोई ।
मीराँकी पीर प्रभु तभी मिटेगी, बैद साँवलियो होई ॥ २ ॥

भजन

जगमें जीवण थोड़ा, राम कुण कहे रे जंजार ॥ टेक ॥
मात पिता जो जन्म दियो है, कर्म दियो करतार ॥ १ ॥
कइ रे खाइयो कइ रे खरचियो, कइ रे कियो उपकार ॥ २ ॥
दिया लिया तेरे संग चलेगा, और नहीं तेरी लार ॥ ३ ॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भज उतरो भवपार ॥ ४ ॥

भजन

मैं आपने सैयाँ संग साँची ।
अब काहे की लाज सजनी, प्रगट ह्वै नाची ॥ १ ॥
दिवस भूख न चैन कबहुं, नींद निशि नासी ।
बेध वारको पार ह्वैगो, ज्ञान गुह गाँसी ॥ २॥
कुल कुटुम्ब सब आनि बैठे जैसे मधुमासी ।
दासि मीराँ लाल गिरिधर, मिटी जग हाँसी ॥ ३ ॥

भजन

यहि विधि भक्ति कैसे होय ।
मनकी मैल हियसे न छूटी, दियो तिलक सिर धोय ॥ १ ॥
काम कूकर लोभ डोरी, बांधि मोहिं चण्डाल ।
क्रोध कसाई रहत घट में, कैसे मिले गोपाल ॥ २ ॥
बिलार विषया लालचीरे, ताहि भोजन देत ।
दीन हीन ह्वै क्षुधा तरसे, राम नाम न लेत ॥ ३ ॥
आपहि आप पुजाय केरे, फूले अंग न समात ।
अभिमान टीला किये बहु, कहु जल कहाँ ठहरात ॥ ४ ॥
जो तेरे अन्तरकी जाणे, तासों कपट न बनै ।
हिरदे हरिको नाम न आवे, मुख तैं मणिया गनै ॥ ५ ॥
हरि-हितूसे हेत कर, संसार आशा त्याग ।
दासि मीराँ लाल गिरिधर, सहज कर बैराग ॥ ६ ॥

भजन

कुण बाँचै पाती बिन प्रभु, कुण बाँचै पाती ॥ टेक ॥
कागद ले ऊधोजी आये, कहाँ रहे साथी ।
आवत जावत पाँव घिसारे, आँखियाँ भईं राती ॥ १ ॥
कागद ले राधा बाँचण बैठी, भर आई छाती ।
नैन-नीरजमें अम्बु बहे रे, गंगा बहि जाती ॥ २ ॥
पाना ज्यूं पीली पड़ी रे, अन्न नहिं खाती ।
हरि बिन जीवड़ो यूं जलैरे, ज्यूं दीपक संग बाती ॥ ३ ॥

साँचा कुछ चकोर चन्दा, झौले बहि जाती ।
वृजनारीकी बिणतीरे, राम मिले मिल जाती ॥ ४ ॥
मने भरोसो राम को रे, डूबत तारयो हाथी ।
दासि मीराँ लाल गिरिधर, सांकड़ारो साथी ॥ ५ ॥

भजन

बड़े घर ताली लागी रे, म्हारा मनरी उणारथ भागी रे ॥ टेक ॥
छीलरीये म्हारो चित्त नहीं रे, डाबरिये कुण जाव ।
गंगा जमुना सूं काम नहीं रे, मैं तो जाय मिलूं दरियाव ॥ १ ॥
हाल्यां मोल्यां सूं काम नहीं रे, सीख नहीं सरदार ।
कांमदाराँ सूं काम नहीं रे, मैं तो ज्वाब करूं दरबार ॥ २ ॥
काचा कथीर सूं काम नहीं रे, लोहा चढ़े सिर भार ।
सोना रूपा सूं काम नहीं रे, म्हांरो हीरांरो व्यापार ॥ ३ ॥
भाग हमारो जागियो रे, भयो समन्द सूं सीर ।
अमृत प्याला छाड़िके, कुण पीवे कडुवो नीर ॥ ४ ॥
पापी कूं प्रभु परचो दीन्यो, दियो रे खजानो पूर ।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, धणी मिल्या छै हजूर ॥ ५ ॥

भजन

यो तो रङ्ग धतां लाग्यो ए माय ॥ टेक ॥
पिया पियाला अमर रसना, चढ़ गई घूम घुमाय ।
यो तो अमल म्हारो कबहुँ न उतरै, कोटि करो न उपाय ॥ १ ॥
साँप पिटारो राणाजी भेज्यो, द्यो मेड़तणी गलडार ।
हँस हँस मीराँ कण्ठ लगायो, यो तो म्हारो नौसर हार ॥ २ ॥

विषको प्यालो राणाजी मेल्यो, द्यो मेड़तणी प्याय ।
कर चरणामृत पी गई रे, गुण गोविन्दरा गाय ॥ ३ ॥
पिया पियाला नामकारे, और न रङ्ग सुहाय ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, काचो रंग उड़ जाय ॥ ४ ॥

भजन

जोगियारी प्रीतड़ी है, दुखड़ारी मूल ॥ टेक ॥
हिलमिल बात बनावत मीठी, पीछे जावत भूल ॥ १ ॥
तोड़त देर करत नहिं सजनी, जैसे चमेली के फूल ॥ २ ॥
मीरांके प्रभु तुम्हरे दरश बिन, लगे हिवड़े में शूल ॥ ३ ॥

भजन

देखो सैंया हरि मन काठ कियो ॥ टेक ॥
आवन कहि गयो अजहुं न आयो, करि करि बचन गयो ॥ १ ॥
खान पान सुध बुध सब विसरी, कैसे करि मैं जियो ॥ २ ॥
बचन तुम्हारे तुमहीं बिसारे, मन मेरो हर लियो ॥ ३ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, तुम बिन फटत हियो ॥ ४ ॥

भजन

जाओ हरि निरमोही डारे, जाणी थारी प्रीत ॥ टेक ॥
लगन लगी जब और प्रीत छी, अब कुछ अँवला रीत ॥ १ ॥
अमृत पाय विषै क्यूं दीजै, कूण गाँवकी रीत ॥ २ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, आप गरजके मीत ॥ ३ ॥

———

भजन

बारी बारी हो राम हूं बारी, तुम आज्यो गली हमारी ॥ टेक ॥
तुम देख्यां बिन कल न पड़त है, जोऊँ बाट तुमारी ॥ १ ॥
कूण सखी सूं तुम रंग राते, हमसूं अधिक पियारी ॥ २ ॥
किरपा कर मोहिं दरशण दीज्यो, सब तकसीर बिसारी ॥ ३ ॥
तुम शरणागत परम दयाला, भवजल तार मुरारी ॥ ४ ॥
मीराँ दासी तुव चरणन की, बार बार बलिहारी ॥ ५ ॥

भजन

मैं बिरहण बैठी जागूं, जगत सब सोवे री आली ॥ टेक ॥
बिरहिन बैठी रंग महल में, मोतियन की लड़ पोवे ।
इक बिरहिन हम ऐसी देखी, अंसुअन माला पोवे ॥ १ ॥
तारा गिण गिण रैन विहानी, सुखकी घड़ी कब आवे ।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, मिलके बिछुड़ न जावे ॥ २ ॥

भजन

मेरो मन लाग्यो हरिजी सूं, अब न रहूंगी अटकी ॥ टेक ॥
गुरु मिलिया रैदासजी, दीन्हीं ज्ञानकी गुटकी ।
चोट लगी निज नाम हरीकी, म्हारे हिवड़े खटकी ॥ १ ॥
माणक मोती परत न पहिरूँ, मैं कबकी नटकी ।
गहणो तो म्हारे माला दोवड़ी, और चन्दनकी कुटकी ॥ २ ॥
राजा-कुलकी लाज गमाई, सांधां के संग मैं भटकी ।
नित उठ हरिजी के मन्दिर जास्यूं, नांचूं दे दे चुटकी ॥ ३ ॥

भाग खुल्यो म्हारो साध संगत सूं, सांवरियाकी बटकी ।
जेठ बहूकी काण न मानूं, घूंघट पड़ गई पटकी ॥ ४ ॥
परम गुरांके शरणमें रहस्यां, परणाम करां लुटकी ।
मीरांके प्रभु गिरिधर नागर, जन्म मरण सूं छुटकी ॥ ५ ॥

भजन

राम मिलणको घणो ऊमावो, नित उठ जोऊँ बाटड़िया ॥ टेक ॥
दरसण बिन मोहिं पल न सुहावे, कलमि पड़त है आँखड़िया ॥१॥
तड़फ तड़फ के बहु दिन बीतें, पड़ी बिरहकी फांसड़ियाँ ॥
इब तो बेग दया कर साहिब, मैं हूं तेरी दासड़ियाँ ॥ २ ॥
नैण दुखी दरसणको तरसे, नाभि न बैठे साँसड़ियाँ ।
रात दिवस यह आरत मेरे कब हरि राखे पासड़ियाँ ॥ ३ ॥
लगी लगण छुटा की नाहीं, इब क्यूं कीजे आँटड़ियाँ ।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, पूरो मनकी आसड़ियाँ ॥ ४ ॥

भजन

माई म्हे तो लियो रमैयो मोल ॥ टेक ॥
कोई कहे छानी, कोई कहे चोरी, लियो है बजंताँ ढोल ॥ १ ॥
कोई कहे कारो, कोई कहे गोरो, लियो है म्हे आँखी खोल ॥२॥
कोई कहे हलको, कोई कहे भारी, लियो है तराजू तोल ॥ ३ ॥
तनका गहणा मैं सब कुछ दीन्या, दियो है बाजूबन्द खोल ॥४॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, पुरब जनम का है कौल ॥ ५ ॥

भजन

म्हारे घर आज्यो प्रीतम प्यारा, तुम बिन सब जग खारा ॥ टेक ॥
तन मन धन सब भेंट करूँ, और भजन करूँ मैं थारा ।
तुम गुणवन्त बड़े गुणसागर, मैं हूं जी औगणहारा ॥ १ ॥
मैं निगुणी गुण एको नाहीं, तुझमे जी गुण सारा ।
मीराँ कहै प्रभु कबहिं मिलोगे, बिन दरसन दुखियारा ॥ २ ॥

भजन

होता जाज्यो राज म्हारे महलाँ होता जाज्यो राज ॥ टेक ॥
मैं औगुणी मेरा साहब सुगणा, सन्त सवाँरें काज ॥ १ ॥
मीराँके प्रभु मन्दिर पधारो, करके केसरिया साज ॥ २ ॥

भजन

इब नहिं मानू राणा थारी, मैं वर पायो गिरधारी ॥ टेक ॥
मणि कपूरकी एक गति है, कोऊ कहो हजारी ।
कंकर कंचन एक गति है, गुँच मिरच इक सारी ॥ १ ॥
अनड़ धड़ीको शरणो लीनो हाथ सुमरणी धारी ।
जोवा लियो अब क्या दिलगिरी, गुरु पाया निज भारी ॥ २ ॥
साधू संगतमें दिल राजी, भई कुटुम्ब सूँ न्यारी ।
क्रोड़ बार समझावो मोकूं चालूंगी बुद्धि हमारी ॥ ३ ॥
रतन जड़ित की टोपी सिर पै, हार कण्ठको भारी ।
चरण घूँघरू घमस पड़त है, म्हे करां स्यामा सूं यारी ॥ ४ ॥
लाज शरम सबही मैं डारी, यो तन चरण अधारी ।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, झक मारो संसारी ॥ ५ ॥

भजन

म्हारे शिर पर सालिग्राम, राणाजी म्हारो काँई करसी ॥ टेक ॥
मीराँ सूं राणाने कहीरे, सुण मीराँ मेरी बात ।
साधाँकी संगत छोड़ दे रे, सखियाँ सब सकुचात ॥ १ ॥
मीराँने सुण यों कही रे, सुन राणाजी बात ।
साध तो भाई बाप हमारे, सखियाँ क्यूं घबरात ॥ २ ॥
जहर का प्याला भेजियारे दीजो मीराँ हाथ ।
अमृत करके पी गई रे, भली करे दीनानाथ ॥ ३ ॥
मीरा प्याला पीलिया रे, बोली दोऊँ करजोर ।
तैं तो मारणकी करी रे, मेरो राखणवालो ओर ॥ ४ ॥
आधे जोहर कीच है रे, आधे जोहर हौज ।
आधे मीराँ एकली रे, आधे राणा की फौज ॥ ५ ॥
काम क्रोध को डालके रे, शील लिये हथियार ।
जीती मीराँ एकली रे, हारी राणाकी धार ॥ ६ ॥
काचगिरीका चौतरा रे, बैठे साध पचास ।
जिनमें मीरां ऐसी दमके, लाख तारोंमें परकास ॥ ७ ॥
टांडा जब वे लादिया रे, बेगी दीन्हा जाण ।
कुलकी तारण अस्तरी रे, चली है पुष्कर न्हाण ॥ ८ ॥

भजन

होली पिया बिन लागै खारी, सुणो री सखी मेरी प्यारी ॥ टेक ॥
सूनो गांव देश सब सूनो, सूनी सेज अटारी ।
सूनी विरहण पिवबिन डोले, तज दई पिव प्यारी ॥
भई हूँ या दुखकारी ॥ होली० ॥ १ ॥

देश विदेश संदेश न पहुंचे, होय अन्देशो भारी ।
गिणतां गिणतां घिसगी रेखा, आँगलियाँ री सारी ॥
अजहुं नाहिं आये मुरारी ॥ होली० ॥ २ ॥
बाजत झांझ मृदङ्ग मुरलिया, बाज रही इकतारी ।
आये बसन्त कन्त घर नाहिं, तनमें जर भया भारी ॥
स्याम मन कहा विचारी ॥ होली० ॥ ३ ॥
अब तो मेहर करो प्रभु मुझ पर, चित दे सुणो हमारी ।
मीराँके प्रभु मिलज्यो माधो, जनम जनमकी क्वांरी ॥
लगी दरशण की तारी ॥ होली० ॥ ४ ॥

भजन

सुनी मैं हरि आवनकी आवाज ॥ टेक ॥
महल चढ़ि चढ़ि जोऊँ मेरी सजनी कब आवे म्हाराज ॥ १ ॥
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल मधुरे साज ॥ २ ॥
उमग्यो इन्द्र चहुं दिशि बरसे, दामिनी छोड़ी लाज ॥ ३ ॥
धरती रूप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलणके काज ॥ ४ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, बेग मिलो महाराज ॥ ५ ॥

भजन

अच्छे मीठे चाख चाख, बेर लाई भीलनी ॥ टेक ॥
ऐसी कहा अचाखती, रूप नहीं एक रती ।
नीच कुळ ओछी जात, अति ही कुचालणी ॥ १ ॥
जूठे फल खाये राम, प्रेमकी प्रतीत जाण ।
ऊँच नीच जाने नहीं, रसकी रसीलणी ॥ २ ॥

ऐसीं कहा वेद पढ़ी, छिनमें बिमाण चढ़ी ।
हरि जी सूं बांध्यो हेत, बैकुण्ठमें झूलणी ॥ ३ ॥
ऐसी प्रीत करे जोई, दास मीराँ तरै सोई ।
पतित पावन प्रभु, गोकुल अहीरणी ॥ ४ ॥

भजन

स्याम मो सूं ऐंडो डोले हो ॥ टेक ॥
औरन सूं खेले धमार, म्हासूं मुखहुं न बोले हो ॥ १ ॥
म्हारी गलियाँ न फिरै बांके आँगण डोले हो ॥ २ ॥
म्हारी आँगली न छुवै, बाकी बहियां मरोरे हो ॥ ३ ॥
म्हारो अँचरो न छुवै, वांको घूंघट खोले हो ॥ ४ ॥
मीराँके प्रभु साँवरो, रङ्ग रसिया डोले हो ॥ १ ॥

ठुमरी

माई मैं तो गोविन्द सों अटकी । टेक ॥
चकित भये हैं दृग दोउ मेरे लखि शोभा नटकी ॥ १ ॥
शोभा अङ्ग अङ्ग प्रति भूषण वनमाला तटकी ।
मोर मुकुट करि किंकिन राजै दुति दामिनि पटकी ॥ २ ॥
रमित भई हाँ साँवरेके संग लोग कहैं भटकी ।
छुटी लाज कुलकानि लोग डर रह्यो न घर हटकी ॥ ३ ॥
मीराँ प्रभुके संग फिरेगी कुञ्ज कुञ्ज लटकी ।
बिना गोपाल लाल बिन सजनी को जानै घटकी ॥ ४ ॥

भजन

मिनखाँ जन्म पदारथ पायो, ऐसी बहुर न आती ॥ टेक ॥
इबके मोसर ज्ञान बिचारो, राम नाम मुख गाती ।
सतगुरु मिलिया सुझ पिछाणी, ऐसा ब्रह्म मैं पाती ॥ १ ॥
सगुरा सूरा अमृत पावे निगुरा प्यासा जाती ॥
मगन भया मेरा मन सुखमें, गोबिन्दका गुण गाती ॥ २ ॥
साहब पाया आदि अनादि, नातर भवमें जाती ।
मीराँ कहे इक आस आपकी, औरां सूँ सकुचाती ॥ ३ ॥

भजन

नींदड़ली नहिं आवै सारी रात, किस बिधां होय परभात ॥ टेक ॥
चमक उठी सपने सुध भूली, चन्द्रकला न सोहात ॥ १ ॥
तलफ तलफ जिव जाय हमारो, कबरे मिले दीनानाथ ॥ २ ॥
भई हूँ दिवानी तन सुध भूली, कोई न जानी म्हारी बात ॥ ३ ॥
मीराँ कहै बीती सोइ जानै, मरण जीवण उन हाथ ॥ ४ ॥

भजन

जोगियाने कहियो रे आदेश ॥ टेक ॥
आऊँगी, मैं नाहिं रहूं रे, कर जटाधारी भेस ॥ १ ॥
चीर को फाडूँ कंथा पहिरूं, लेऊँगी उपदेश ।
गिणते गिणते घिस गई रे, मेरी उंगलियोंकी रेख ॥ २ ॥
मुद्रा माला भेष लूँ रे, खप्पर लेऊँ हाथ ।
जोगिन होय जग ढूँढ़सूं रे, सांवलियाके साथ ॥ ३ ॥

प्राण हमारो वहाँ बसत है, यहाँ तो खाली खोड़ ।
मात पिता परिवार सूं रे, रही तिनका तोड़ ॥ ४ ॥
पाँच पचीसों बस किये, मेरा पल्ला न पकड़ै कोय ।
मीराँ व्याकुल बिरहणी, कोइ आन मिलावै मोय ॥ ५ ॥

भजन

मेरे परम सनेही रामकी, नित ओलूंड़ी आवे ॥ टेक ॥
राम हमारे हम हैं राम के, हरि बिन कुछ न सुहावे ॥ १ ॥
आवण कह गये अजहुँ न आये, जिवड़ो अति अकुलावे ॥ २ ॥
तुम दरशणकी आश रमैया, निशिदिन चितवत जावे ॥ ३ ॥
चरण कँवलकी लगन लगी अति, बिन दरशण दुख पावे ॥ ४ ॥
मीराँ कूं प्रभु दरशण दीन्हा, आनन्द बरण्यो न जावे ॥ ५ ॥

भजन

मैं तो म्हारा रमैया ने देखबो करूं री ॥ टेक ॥
तेरो ही उमरण तेरो ही सुमरण, तेरो ही ध्यान धरूँरी ॥ १ ॥
जहाँ-जहाँ पांव धरूं धरणी पर, तहाँ-तहाँ निरत करूंरी ॥ २ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, चरणां लिपट परूंरी ॥ ३ ॥

भजन

जोगियारी सुरत मनमें बसी ॥ टेक ॥
नित प्रति ध्यान धरत हूं दिलमें, निसदिन होंत खुसी ॥ १ ॥
कहा करूं कित जाहुं मोरी सजनी, मानो सरप डसी ॥ २ ॥
मीराँके प्रभु कब रे मिलोगे, प्रीत रसीली बसी ॥ ३ ॥

भजन

पतियाँ मैं कैसे लिखूं, लिखि ही न जाई ॥ टेक ॥
कलम धरत मेरे कर कँपत, हिरदो रहो घर्राई ॥ १ ॥
बात कहूं मोहि बात न आवे, नैण रहे झर्राई ॥ २ ॥
किस विधि चरण कमल मैं गहि हौं, सबहिं अङ्ग थर्राई ॥ ३ ॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सब ही सुख बिसराई ॥ ४ ॥

भजन

मिलता जाज्यो हो गुर ज्ञानी, थारी सूरत देखि लुभानी ॥ टेक ॥
मेरो नाम बूझि तुम लीज्यो, मैं हूँ बिरह दिवानी ॥ १ ॥
रात दिवस कल नाहिं परत है, जैसे मीन बिन पानी ॥ २ ॥
दरश बिना मोहिं कछु न सुहावै, तलफ तलफ मर जानी ॥ ३ ॥
मीराँ तो चरणनकी चेरी, सुण लीजे सुखदानी ॥ ४ ॥

भजन

मेरे प्रीतम प्यारे रामने, लिख भेजूं री पाती ॥ टेक ॥
श्याम सन्देशो कबहुँ न दीन्हों, जान बूझ गुझ वाती ॥ १ ॥
ऊँची चढ़ चढ़ पन्थ निहारूं, रोय रोय अंखियाँ राती ॥ २ ॥
तुम देख्याँ बिन कल न परत हैं, हियो फटत मोरी छाती ॥ ३ ॥
मीराँके प्रभु कब रे मिलोगे, पूर्व जनमके साथी ॥ ४ ॥

भजन

गोबिन्द कबहुँ मिले पिया मेरा ॥ टेक ॥
चरण कमलको हँस करि देखों, राखो नैनन नेरा ॥ १ ॥

निरखणको मोहि चाव घणेरो, कब देखो मुख तेरा ॥ २ ॥
व्याकुल प्राण धरत नहिं धीरज, मिल तूँ मीत सबेरा ॥ ३ ॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, ताप तपन बहुतेरा ॥ ४ ॥

भजन

राणाजी हूँ अब न रहूँगी तोरी हटकी ॥ टेक ॥
साधसंग मोहि प्यारा लागै, लाज गई घूँघट की ॥ १ ॥
पीहर मेड़ता छोड़ा अपना, सुरत निरत दोउ चटकी ।
सतगुरु मुकर दिखाया घरका, नाचूँगी दे दे चुटकी ॥ २ ॥
हार सिंगार सभी ल्यो अपना चूड़ी करकी पटकी ।
मेरा सुहाग अब मोकूँ दरसा, और न जाने घटकी ॥ ३ ॥
महल किला राणा मोहिं न चाये, सारी रेशम पटकी ।
हुई दिवानी मीराँ डोलै, केश लटा सब छिटकी ॥ ४ ॥

भजन

चलां वांही देश प्रीतम पावाँ, चलां वांही देश ॥ टेक ॥
कहो तो कुसुम्बी सारी रंगवां, कहू तो भगवां भेम ॥ १ ॥
कहो तो मोतियन मांग भरावाँ, कहो छिटकावाँ केश ॥ २ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, सुणियो बिरदके नरेश ॥ ३ ॥

भजन

म्यारे नैणा आगे रहीजो जी, श्याम गोबिन्द ॥ टेक ॥
दास कबीर घर बालद लाया, नामदेवका छान छवंद ॥ १ ॥
दास धनाको खेत निपजायो गजकी टेर सुनन्द ॥ २ ॥

भीलणीका बेर सुदामाका तण्डुल, भर मुठड़ी बुकन्द ॥ ३ ॥
करमा बाईको खींच ऊरोग्यो, होई परसण पावन्द ॥ ४ ॥
सहस गोप बिच श्याम बिराजे, ज्यों तारा बिच चन्द ॥ ५ ॥
सब सन्तोंका काज सुधारा, मीराँ सूँ दूर रहन्द ॥ ६ ॥

भजन

म्हारे गुरु गोविन्द री आण, गोरत्न ना पूजां ॥ टेक ॥
औरज पूजै गोरज्याजी, थे क्यूं पूजो न गोर।
मन वांछित फल पावस्योजी, थे क्यूं पूजो ओर ॥ १ ॥
नहिं म्हें पूजां गोरज्याजी, नहिं पूजां अनदेव।
परम सनेही गोबिन्दो, थे कांई जाणो म्हारो भेव ॥ २ ॥
बाल सनेही गोबिन्दो, साध सन्तांको काम।
थे बेटी राठोड़की, थाने राज दियो भगवान ॥ ३ ॥
राजा करे बांने करणे दीज्यो, मैं भगताँ री दास।
सेवा साधू जननकी म्हारे राम मिलणकी आस ॥ ४ ॥
लाजै पीहर सासरो, माइतणो मोसाल।
सबही लाजै मेड़तियाजी, थासूँ बुरा कहे संसार ॥ ५ ॥
चोरी कराँ न मारगी, नहीं मैं करूँ अकाज।
पुन्नके मारग चालताँ, झख मारो संसार ॥ ६ ॥
नहिं मैं पीहर सासरे, नहिं पियाँजी री साथ।
मीराँने गोविन्द मिल्याजी, गुरु मिलिया रैदास ॥ ७ ॥

भजन

भाभी मीराँ कुलने लगाई गाल,
इंडरगढ़ का आया ओलमा ।
बाई ऊदाँ थारे म्हारे नातो नाहिं,
बासोबस्याँका आया जी ओलमा ॥ १ ॥
भाभी मीराँ साधाँ का संग निवार,
सारो शहर थारी निन्दा करै ।
बाई ऊदाँ करे तो पड़्या झख मारो,
मन लाग्यो रमता रामसूँ ॥ २ ॥
भाभी मीराँ पहरोनो मोत्याँको हार,
गहणो पहरयो रतन जड़ावको ।
बाई ऊदाँ छोड़यो मैं मोत्याँको हार,
गहणो तो पहर्यो शील सन्तोषको ॥३॥
भाभी मीराँ औराँके आवेजी आछी रूढ़ी जान,
थारे आवे छै हरिजन पावणा ।
बाई ऊदाँ चढ़ चौबारा झांक,
साधाँको मण्डल लागो सुहावणो ॥ ४ ॥
भाभी मीराँ लाजे गढ़ चीतौड़,
राणोजी लाजै गढ़ रा राजवी ।
बाई ऊदाँ ताप्यो ताप्यो चीतौड़,
राणाजी ताप्या गढ़का राजवी ॥ ५ ॥

भाभी मीरां लाजे लाजे थारा मायड़ बाप,
पीहर लाजे जी थारा मेड़तो।
बाई ऊदां तारथा म्हे तो मायड़ बाप,
पीहर तारथोजी मेड़तो ॥ ६ ॥
भाभी मीरां राणाजी कियो छै थांपर कोप,
रतन कचोले विष घोलियो।
बाई ऊदाँ घोल्यो तो घोलण द्यो,
कर चिरणामृत वोही म्हे पीवस्या ॥ ७ ॥
भाभी मीरां देखतड़ाँ ही मर जाय,
यो विष कहिये बासक नागको।
बाई उदां नही म्हारे माय न बाप,
अमर डाली धरती झेलिया ॥ ८ ॥
भाभी मीरां राणाजी उभा छे थारे द्वार,
पोथी मांगे थे थारा ज्ञानकी।
बाई ऊदां पोथी म्हारी खांड़ा की धार,
ज्ञान निभावन राणो है नहीं ॥ ९ ॥
भाभी मीरां राणाजी रो बचन न लोप,
उन रूठ्यां भीड़ी कोउ नहीं।
बाई ऊदां रमापति आवे म्हारे भीड़,
अरज करूँ छू तासूं बीनती ॥ १०

भजन

थाने बरज बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी ॥ टेक ॥
राणो रोस कियो थाँ ऊपर, साधोंमें मत जारी ।
कुलके दाग लगै छै भाभी, निन्दा हो रही भारी ॥ १ ॥
सधां रे संग बन बन भटको, लाज गुमाई सारी ।
बड़ा घरां थे जनम लियो छै, नाचो दे दे तारी ॥ २ ॥
बर पायो हिंदुवाणो सूरज, थे कांई मन धारी ।
मीराँ गिरधर साध संग तज, चलो हमारी लारी ॥ ३ ॥

भजन

मीरां बात नहीं जग छानी, ऊदाँ बाई समझो सुघर सयानी ॥ टेक ॥
साधू मात पिता कुल मेरे, सजन सनेही ज्ञानी ।
सन्त चरण की शरण रैन दिन, सत्य कहत हुँ बानी ॥ १ ॥
राणाने समझावो जावो, मैं तो बात न मानी ।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, संतां हाथ बिकानी ॥ २ ॥

भजन

भाभी बोलो बचन बिचारी ॥ टेक ॥
साधोंकी संगत दुखभारी, मानो बात हमारी ।
छापा तिलक गलहार उतारो, पहिरो हार हजारी ॥ १ ॥
रतन जड़ित पहिरो आभूषण भोगो भोग अपारी ।
मीराँजी थे चलो महलमें, थाने सोगन म्हारी ॥ २ ॥
भाव भगत भूषण तजे शील सन्तोष सिणगार ।
ओढ़ी चूनर प्रेमकी, गिरधरजी, भरतार ॥ ३ ॥

उदां बाई मन समझ ,जावो अपणे धाम ।
राजपाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूँ काम ॥ ४ ॥

भजन

रमैया बिनु नींद न आवे ।
नींद न आवे बिरह सतावे, प्रेमकी आंच ढुलावे ॥ टेक ॥
बिन पिया जोत मन्दिर अन्धियारो, दीपक दाय न आवे ।
पिया बिना मेरी सेज अलूणी, जागत रैन बिहावे ॥
पिया कबरेघर आवे ॥ रमैया० ॥ १ ॥
दादुर मोर पपिहार बोलैं, कोयल शब्द सुणावे ॥
घुमंड़ घटा ऊलर होय आई, दामिन दमक डरावे ॥
नैन झर लावे ॥ रमैया० ॥ २
कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, बेदन कुण बुतावे ।
बिरह-नागने मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावे ॥
गड़ी घस लावे ॥ रमैया० ॥ ३ ॥
को है सखा सहेली सजनी, पिया कूं आन मिलावे ।
मीराँके प्रभु कबरे मिलोगे, मनमोहन माहिं भावे ॥
कबै हंमकर बतलावे ॥ रमैया० ४ ॥

भजन

किण संग खेलूं होली, पिया तज गये हैं अकेली ॥ टेक ॥
माणिक मोती सब हम छोड़े गल में पहनी सेली ।
भोजन भवन भलो नहिं लागै, पिया कारण भइ गैली ॥
मुझे दूरी क्यूँ म्हेली ॥ किण० ॥ १ ॥

अब तुम प्रीत और से जोड़ी हमसे करी क्यूं पहेली ।
बहु दिन बीते अजहुँ नहिं आये,लग रही तालावेली ॥
किण बिलमाये हेलो० ॥ किण० ॥ २॥
श्याम बिना जिवड़ो मुरझावे,जैसे जल बिन बेली ।
मीरां कूं प्रभु दरशण दीज्यो,जनम जनमकी चेली ॥
दरसन बिन खड़ी दुहेली ॥ किण० ॥ ३ ॥

भजन

बादल देख डरी हो श्याम मैं,बादल देख झरी ॥ टेक ॥
काली पीली घटा उमंगी,बरस्यो एक घरी ॥ १ ॥
जित जाऊँ तित पानिहि पानी,हुई सब भोम हरी ॥ २ ॥
जाका पिव परदेस बसत है,भीजै बार खरी ॥ ३ ॥
मीरांके प्रभु गिरिधर नागर,कीज्यो प्रीत खरी ॥ ४ ॥

भजन

भीजै म्हारो दावण चीर,सवणियो लूम रह्योरे ॥ टेक
आप तो जाय बिदेसां छाये,जिवड़ो धरत न धीर ॥ १ ॥
लिख लिख पतियां सन्देशो भेजूं,कब घर आवे म्हारो पीव ॥ २ ॥
मीरांके प्रभु गिरिधर नागर, दरशन द्योनी बलबीर ॥ ३ ॥

भजन

छांडो लंगर मोरी बंहियां गहोना ॥ टेक
मैं तो नार पराये घरको,मेरे भरोसे गुपाल रहोना ॥ १ ॥
जोतुम मेरी बहियाँ गहत हो,नयन जोर मेरे प्राण हरोना ॥२ ॥

वृन्दाबन की कुँज गली में, रीत छोड़ अनरीत करोना ॥ ३
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चरण-कमल चित टारे टरोना ॥४

भजन

साजन सुध ज्यूं जाने त्यूं लीजे हो ॥ टेक
तुम बिन और न कोई, कृपा रावरी कीजे हौ ॥ १
दिवस न भुख रैन नहि निद्रा, यूं तन पल पल छीजे हो ॥२
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, मिल बिघुरन नहिं कीजे हो ॥३

भजन

तुम जीमौ गिरधर लालजी ॥ टेक
मीराँ दासी अरज करे छे, सुनिये परम दयालजी ॥ १
छप्पन भोग छतीसों विन्जन, पावो जन प्रतिपालजी ॥ २
राजभोग आरोगो गिरिधर, सनमुख राखो थालजी ॥ ३
मीराँ दासी चरण उपासी, कीजे बेग निहाल जी ॥ ४

भजन

राणाजी थारी देसड़लो रंग रूड़ो ॥ टेक ॥
थारे मुलकमें भक्ति नहीं छै, लोग बसें सब कूड़ो ॥ १
पाट पटम्बर सबही मैं त्यागा, सिर बाँधली जड़ो ॥ २
माणिक मोती मैं सबही त्यागा, तज दियो करको चूड़ो ॥ ३
मेवा मिसरी मैं सबही त्यागा, त्यागो छे सक्कर पूरो ॥ ४
तनकी मैं आस कबहुँ नहिं कीनो, ज्यूं रण माँही सूरी ॥ ५
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, वर पायो मैं पूरो ॥ ६

भजन

पिया तेरे नाम लुभाणी हो ॥ टेक
नाम लेत तिरता सुण्या, जैसे पाहण पाणी हो ॥ १
सुकिरत कोई ना कियो, बहु करम कुमाणी हो ।
गणिका कीर पढ़ावतां बैकुन्ठ बसाणी हो ॥२
अरध नाम कुन्जर लियो बाँकी अवध घटानी ।
गरूड़ छाड़ी हरि धाइया, पसु जूण मिटाणी हो ॥३
अजामीलसे ऊधरे जम त्रास नसानी हो ।
पुत्र हेतु पदयी दई, जग सारै जाणी हो ॥४
नाम महातम गुरू दियो, परतीत पिछाणी हो ।
मीराँ दासी रावली अपणी, कर जाणी हो ॥ ५

भजन

मेरे तो एक राम नाम दूसरो न कोई ।
दूसरो न कोई साधो, सकल लोक जोई ॥ टेक
भाई छोड़्या बंधु छोड़्या सगा सोई ।
साध संग बैठ बैठ लोक लाज खोई ॥ १ ॥
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई ।
प्रेम-नीर सींच सींच बिष बेल बोई ॥ २ ॥
दधि मथ घृत काढ़ लियो, डार दई छोई ।
राणो बिषको प्यालो भेज्यो, पीय मगन होई ॥ ३ ॥
अब तो बात फैल पड़ी, जाणे सब कोई ।
मीराँ राम लगण लगीं, होणी होय सो होई ॥ ४ ॥

भजन

मेरे मन रामनामा बसी ।। टेक
तेरे कारण श्यामसुन्दर, सकल लोगाँ हंसी ॥ १ ॥
कोई कहे भई बौरी, कोई कहे कुल नसी ।
कोई कहे मीराँ दीप आगरी, नाम पियासूँ रसी ।। २ ।।
खांड़े धर भक्तकी न्यारी, कटि हैं जम फंसी ।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, शब्द सरोवर धंसी ॥ ३ ॥

भजन

गोबिंद सूँ प्रीत करत, तबहीं क्यूं न हटकी ।
इब तो बात फैल परी, जैसे बीज बटकी ।। गेक
बीचको बिचार नाहिं, छाँय परी तटकी ।
अब चूको तो ठौर नाहिं, जैसे कला नटकी ॥ १ ॥
जलकी घुरी गाँठ परी, रसना गुण रटकी ।
इब तो छुड़ाय हारी, बहुत बार झटकी ।। २ ।।
घर घर में घोल मठोल, बानी घट घटकी ।
सबहीं कर शीश धारि, लोक लाज पटकी ।। ३ ।।
मदकी हस्ती समान, फिरत प्रेम लटकी ।
दासि मीराँ भक्ति बूंद हिरदय बीच गटकी ।। ४ ।।

भजन

अरज करेछे मीराँ राकड़ी, अभी अभी अरज करेछे ।। टेक ।।
मणिधर स्वामी म्हारे मंदिर पधारो, सेवा करूँ दिन रातड़ी ।। १ ।।

फुलना रे तोड़ा फुलना, रे गजरा, फुलना रे हार फुल पाँखड़ी ॥२॥
फुलना रे गादी फुलना रे तकिया, फुलना रे माथ री पछेड़ी ॥३॥
पय पकवान मिठाई मेवा, सेबैयाँ ने सुन्दर दहींड़ी ॥ ४ ॥
लबंग सुपारीं एलची तज, वाला काथा चुनारी पान बीड़ी ॥५॥
सेज बिछाऊँ ने पासा मंगाऊँ, रमबा आवो तो जाय रातड़ी ॥५॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, (वाला) रामने जोताँ ठरे आँखड़ी ॥७॥

भजन

राणाजी मैं सांवरे रँगराची ॥ टेक ॥
साज सिंगार बांध परा घूंघरू, लोक लाज तज नाची ॥ १ ॥
गई कुमति लइ साधकी संगत, भगत रूप भई साँची ॥ २ ॥
गाय गाय हरिके गुण निशिदिन, काल व्यालासों बाची ॥ ३ ॥
उसबिन सब जग खारौ लागत, और बात सब काची ॥ ४ ॥
मीराँ श्रीगिरधरलाल सों भगति रसीली जाची ॥ ५ ॥

भजन

हेली म्हांसूँ हरि बिन रह्यौ न जाय ॥ टेक
सास लड़े मेरी नणद खिजावे, राणो रह्यो रिसाय ॥ १ ॥
पहरो भी राख्यो चौकी बठाई, तालो दियो जड़ाय ॥ २ ॥
पूर्व जन्मकी प्रीत पुराणी, सो क्यूं छोड़ी जाय ॥ ३ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, और न आवे म्हारी दाय ॥ ४ ॥

भजन

माई म्हाने सुपनेमें, परण गया जगदीश ।
सोतीको सुपने आवियाजी, सुपनो विश्वावीस ॥ टेक

गैली दीखे मीराँ बावली, सुपनो आल जंजाल।
माई म्हाने सुपनेमें, परण गया गोपाल ॥ १
अंग अंग हल्दी में करीजी, सुधे भीज्यां गात।
माई म्हाने सुपनेमें, परण गया दीनानाथ ॥ २
छप्पन क्रोड़ जहां जान पधारे, दुलहो श्री भगवान।
सुपनेमें तोरण बांधियोजी, सुपने में आई जान ॥ ३
मीराँने गिरधर मिल्याजी, पूर्व जनमके भाग।
सुपने में म्हाने परण गया जी, हो गयो अचल सुहाग ॥ ४

भजन

रे साँवलिया म्हारे आज रंगीली जगशोर छेजी ॥ टेक ॥
काली पीली बादली, बीजली चिमके, मेघ घटा घणघोर छेजी ॥ १॥
दादुर मोर पपीहो बोले, कोयल कर रही शोर छेजी ॥ २ ॥
आप रङ्गीला सेज रङ्गीली, रङ्गीलो सारो साथ छेजी ॥ ३ ॥
मीरांके प्रभु गिरधर नागर, चरणामें म्हारो जोर छेजी ॥ ४ ॥

भजन

सखीरी लाज बैरण भई ॥ टेक ॥
श्रीलाल गोपालके संग काहे नाहीं गई ॥ १ ॥
कठिन क्रूर अक्रूर आयो, साजि रथ कहँ नई ॥ २ ॥
रथ चढ़ाय गोपाल लैगो हाथ मींचत रही ॥ ३ ॥
कठिन छाति श्याम बिछुरत, बिरहतें तन तई ॥ ३ ॥
दासि मीरां लाल गिरधर बिखर क्यों ना गई ॥ ५ ॥

भजन

सखीरी मैं तो गिरधरके रङ्ग राती ॥ टेक ॥
पचरंग मेरा चोला रंगादे, मैं झुरमुट खेलण जाती ।
झुरमुटमें मेरो साईं मिलेगो, खोल अडम्बर गाती ॥ १ ॥
चन्दा जायगा, सुरज जायगा, जायगा धरण अकासी ।
पवन पाणि दोनों ही जायँगे, अटल रहै अविनाशी ॥ २ ॥
सुरत निरत का दिवला संजोले, मनसा की कर बाती ।
प्रेम-हरीका तेल बना ले, जगा करे दिन राती ॥ ३ ॥
जिनके पिय परदेश बसतहै, लिखि लिखि भेजें पाती ।
मेरे पिय मो माँहि बसत है, कहूं न आती जाती ॥ ४ ॥
पीहर बसूं न बसूं सास घर, सतगुरू-शब्द संगाती ।
ना घर मेरा ना घर तेरा, मीरां हरि रंग राती ॥ ५ ॥

भजन

तुम्हरे कारण सब कुछ छोड्या, अब मोहि क्यूं तरसावो ॥ टेक ॥
विरह विथा लागी उर अन्दर, सो तुम आय बुझावो ॥ १ ॥
इव छोड्या नहिं बनै प्रभुजी, हँसकर तुरत बुलावो ॥ २ ॥
मीराँ दासी जनम जनमकी अंग सूं अंग लगावो ॥ ३ ॥

भजन

प्रेमनी प्रेमनी रे, मन लागी कटारी प्रेमनी रे ॥ १ ॥
जल जमुना माँ भरवा गया ताँ, हती गागर माथे हेमनी रे ॥ १ ॥
काँचे ते ताँतने हरिजी ये बांधी, जेम खेचे तेमनी रे ॥ २ ॥
मीरांके प्रभु गिरिधर नागर सांवली सुरत शुभ एमनी रे ॥ ३ ॥

भजन

मीरा मन मानी सुरत सेल असमानी ॥ टेक ॥
जब जब सुरत लगे वा घरकी, पल पल नैनन पानी ॥ १ ॥
ज्यों हिये पी तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी ॥ १ ॥
रात दिवस मोहिं नीद न आवे, भावे अन्न न पानी ॥ ३ ॥
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैण बिहानी ॥ ४ ॥
ऐसो बैद मिलै कोई भेदी, देश बिदेश पिछानी ॥ ५ ॥
तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहि भरमों खानी ॥६ ॥
खोजत फिरौं भेज वा घरको, कोई न करत बखानी ॥ ७ ॥
रैदास सन्त मिले मोहिं सत्गुरु, दीन्हा सुरत सहदानी ॥ ८ ॥
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी ॥ ६ ॥
मीरां खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी ॥१० ॥

भजन

श्यामको सन्देशो आयो पतियाँ लिखाय माय ॥ टेक ॥
पतियां अनूप छाई, छतियाँ लीनी लगाय ।
अञ्चलकी ओट दे दे, ऊधो पै लई बँचाय ॥ १ ॥
बालकी जटा बनाऊँ, अंग तो भभूत लाऊँ ।
फाडूँ चीर पहरूँ कंथा, जोगण बण जाऊँ माय ॥ २॥
इन्द्रके नगारे बाजे, बादलकी फौज छाई ।
तोपखाना पेसखाना, उतरा है बागाँ आय ॥ ३ ॥
गोकुल उजाड़ दीन्यो, मथुरा लई बसाय ।
कुबजासूँ बांध्यो हेत, मीराँ है गाई सुनाय ॥ ४ ॥

भजन

कोई कछु कहे मन लागा ॥ टेक ॥
ऐसी प्रीत लगी मनमोहन, ज्यूं सोनेमें सुहागा ॥ १ ॥
जनम जनमको सोयो मनुत्रो, सतगुरु शब्द सुण जागा ॥ २ ॥
मात पिता सुत कुटम कबीला, टूट गया ज्यूं तागा ॥ ३ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, भाग हमारा जागा ॥ ४ ॥

भजन

नैनन बनज बसाऊँगी, जो मैं साहब पाऊँ ॥ टेक ॥
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँ ॥ १ ॥
त्रिकुटी-महलमें बना है झरोखा, वहाँ से झांकी लगाऊँ ।
सुन्न महलमें सुरत जमाऊँ, सुखकी सेज बिछाऊँ ॥ ३ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, बार बार बलिजाऊँ ॥ ४ ॥

भजन

तुम आज्योजी रामा, आवत आमाँ श्यामा ॥ टेक ॥
तुम मिलियाँ मैं बहु सुख पाऊँ, सरैं मनोरथ कामा ॥ १ ॥
तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं, जैसे सूरज घामा ॥ २ ॥
मीराँके मन और न माने, चाहे सुन्दर श्यामा ॥ ३ ॥

भजन

रावरो बिड़द मोहि रूढ़ो लागे, पीड़ित पराये प्राण ॥ टेक ॥
सगो सनेही मेरो और न कोई, बैरी सकल जहान ॥ १ ॥
ग्राह गह्यो गजराज उबार्‌यो, बूड़ न दियो छै जान ॥ २ ॥
मीराँ दासी अरज करत है, नहिं जी सहारो आन ॥ ३ ॥

भजन

इक अरज सुणो पिय मोरी, मैं किण संग खेलूं होरी ॥ टेक ॥
तुम तो जाय विदेसाँ छाये, हमसे रहे चित चोरी ।
तन आभूषण छोड़े सब ही, तज दिये पाट पटोरी ॥
मिलणकी लग रही डोरी ॥ इक० ॥ १ ॥
आय मिल्याँ बिन कल न पड़त है, त्यागे तिलक तमोली ।
मीरांके प्रभु मिलज्यौ माधो, सुणज्यो अरजी मोरी ॥
राम बिन बिरहण होरी ॥ इक० ॥ २ ॥

भजन

रंग भरी रंग भरी रंगसूं भरीरी,
होली आई प्यारी रंगसूं भरीरी ॥ टेक ॥
उड़त गुलाल लाल भये बादल, पिचकारिनकी लगी झरीरी ॥ १ ॥
चोवा चन्दन और अरगजा, केसर गागर भरी धरीरी ॥ २ ॥
मीरांके प्रभु गिरिधर नागर, चेरी होय पांयनमें परीरी ॥ ३ ॥

भजन

सावण दे रह्यो जोरा, घर आवोजी श्याम मोरा ॥ टेक ॥
उमड़ घुमड़ चहुँ दिशिसे आया, गरजत है घनघोरा ॥ १ ॥
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही शोरा ॥ १ ॥
मीरॉंके प्रभु गिरिधर नागर, जो वारूँ सोई थोरा ॥ ३ ॥

भजन

बरसे बदरिया सावणकी, सावणकी मन भावनकी ॥ टेक ॥
सावणमें उमग्यो मेरो मनवा, भनक सुणी हरि आवण की ॥ १ ॥
उमड़ घुमड़ चहुँ दिशिसे आयो, दामिन दमके झर लावणकी ॥२॥
नन्हीं नन्हीं बूंदन मेहा बरसे, शीतल पवन सोहावनकी ॥३॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, आनन्द मंगल गावनकी ॥ ४ ॥

भजन

मेहा बरसवो करे रे, आज तो रमैया मेरे घरे रे ॥ टेक ॥
नान्हीं नान्हीं बूंद मेघ घन बरसे, सूखे सरवर भरे रे ॥ १ ॥
बहुत दिनां पै प्रीतम पायो, बिछुड़नको मोहिं डर रे ॥ २ ॥
मीराँ कहे अति नेह जुड़ायो, मैं लियो पुरबलो बर रे ॥ ३ ॥

भजन

रे पपीहा प्यारे कबको बैर चितारो ॥ टेक ॥
मैं सूती छी अपने भवनमें, पिय पिय करत पुकारो ॥ १ ॥
दाध्या ऊपर लूण लगायो, हिवड़े करवत सारो ॥ २ ॥
उठि बैठो बृच्छकी डाली, बोल बोल कंठ सारो ॥ ३ ॥
मीरांके प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणां चित धारो ॥ ४ ॥

भजन

आये आये जी म्हाराज आये ॥ टेक ॥
तज बैकुण्ठ तज्यो गरुड़ासन, पवन वेग उठ ध्याये ॥ १ ॥
जब ही दृष्टि परे नंदनन्दन, प्रेम-भक्ति रस प्यावे ॥ २ ॥
मीरांके प्रभु गिरिधर नागर, चरणकमल चित्त लाये ॥ ३ ॥

भजन

कमलदल लोचना तैंने कैसे नाथ्यो भुजंग ॥ टेक ॥
पताल कालिनाग नाथ्यो, फण फण निर्त करन्त ॥ १ ॥
कूद पर्यो न डूब्यो जल मांही, और काहू नहिं सङ्क ॥ २ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, श्री बृन्दाबन चन्द ॥ ३ ॥

भजन

इब नाहिं बिसरूँ, म्हारे हिरदे लिख्यो हरिनाम।
म्हारे सत्गुरु दियो बताय, इब नहिं बिसरूँ रे ॥ टेक ॥
मीराँ बैठी महलमें रे, ऊठत बैठत राम।
सेवा करस्याँ साध की, म्हारे और न दूजो काम ॥ १ ॥
राणोजी बतलाइया, कइ देणो जवाब।
पण लाग्यो हरि नामसूँ, म्हारे दिन दिन दूनो लाभ ॥ २ ॥
सींप भर्यो पानी पीवे रे, टांक भर्यो अन्न खाय।
बतलायां बोली नहीं रे, राणोजी गया रिसाय ॥ ३ ॥
विषरा प्याला राणोजी भेज्या, दीज्यो मेड़तणीके हाथ।
कर चरणामृत पी गई, म्हारे सबल धणीको साथ ॥ ४ ॥
विषको प्यालो पी गई, भजन करे उस ठौर।
थारी मारी ना मरूँ, म्हारो राखणवालो और ॥ ५ ॥
राणाजी मोपर कोप्यो रे, मारूँ एक न सेल।
मार्‌यां पिराछत लागसी, म्हाने दीज्यो पीहर मेल ॥ ६ ॥
राणो मोपर कोप्यो रे, रती न राख्यो मोद।
ले जाती बैकुण्ठमें यो, तो समझयो नहीं सिसोद ॥ ७ ॥

छापा तिलक बणाइया, तजिया सब सिणगार।
मैं तो शरणे रामके, भल निन्दो संसार॥ ८॥
माला म्हारे देवड़ी, सील बरत सिणगार।
इबके किरपा कीजियो, हूँ तो फिर बांधूं तलवार॥ ९॥
रथां बैल जुतायके, ऊँटां कसियो भार।
कैसे तोडूं रामसूं म्हारे भो भोरो भरतार॥ १०॥
राणो सांड्यो मोकल्यो, जाज्यो एके दौड़।
कुलकी तारण अस्तर या तो मुरड़ चली राठोड़॥ ११॥
सांड़ो पाछो फेरयो रे, परत न देस्यां पांव।
कर सूरा पण नीसरी, म्हारे कुण राणे कुण राव॥ १२॥
संसार निन्दा करे रे, दुखियो सब परिवार।
कुल सारो ही लाजसी, मीराँ थे जो भयाजी ख्वार॥ १३॥
राती माती प्रेमकी, विष भगतको मोड़।
राम अमल माती रहे, धन मीराँ राठोड़॥ १४॥

भजन

आज म्हारे साधू जननो संग रे राणा म्हारा भाग भलजी॥टेक॥
साधू जननो संग जो करिये चड़े ते चौगुणो रंग रे॥ १॥
साकर जननो संग न करिये पड़े भजन में भंग रे॥ २॥
अड़सठ तीरथ सन्तोंने चरणे कोटि काशीने सोय गंग रे॥ ३॥
निन्दा करेसे नरक कुण्ड मां जास्यो, थारे आंधला अपंग रे॥४॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, सन्तो नीरज म्हारे अंग रे॥ ५॥

भजन

लेतां लेतां राम नामके, लोकड़ियां तो लाज मरे छे ॥ टेक ॥
हरि मन्दिर जाताँ पावलियाँ दूखे, फिरि आवे सारे गाँव रे ॥ १ ॥
झगड़ो थाय त्याँ दौड़ीने जाय रे, मुकीने घर ना काम रे ॥ २ ॥
भाँड़ गवैया गणिका नित्य करताँ, बेसी रहे चारों जाम रे ॥ ३ ॥
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित हाम रे ॥ ४ ॥

भजन

आवत मोरी गलियनमें गिरिधारी, मैं तो छुप गइ लाज की मारी ॥टेक
कुसूमल पाग केसरिया जामो, ऊपर फूल हजारी।
मुकुट ऊपर छत्र विराजे, कुन्डलकी छिब न्यारी ॥ १ ॥
केसरी चीर दरियाइ को लेंगों, ऊपर आँगिया भारी।
आवत देखे कृष्ण मुरारी, छुप गई राधा प्यारी ॥ २ ॥
मोर मुकुट मनोहर सोहे, नथनीकी छिब न्यारी।
गल मोतिनकी माल बिराजे, चरण कमल बलिहारी ॥ ३ ॥
ऊभी राधा अरज करत है, सुणज्यो किसन मुरारी।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल पर वारी ॥ ४ ॥

भजन

राणाजी म्हे तो गोविन्द गुण गास्याँ ॥ टेक ॥
चरणामृतका नेम हमारे, नित उठ दरशण जास्याँ ॥ १ ॥
हरि मन्दिरमें निरत करस्याँ, घूँघरियाँ घमकास्याँ ॥ २ ॥
राम नामको झाँझ चलास्याँ, भवसागर तिरजास्याँ ॥ ३ ॥
यह संसार बाड़का काँटा, ज्याँ संगत नहिं जास्याँ ॥ ४ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, निरख परख गुण गास्याँ ॥ ५ ॥

भजन

राणाजी तैं जहर दियो मैं जाणी ॥ टेक ॥
जैसे कन्चन दहत अगिनमें, निकसत बरा बाणी ॥ १ ॥
लोक लाज कुलकाण जगतकी दइ बहाय जस पाणी ॥ २ ॥
अपने घरका परदा करले, मैं अबला बौराणी ॥ ३ ॥
तरकस तीर लग्यो मेरे हिय रे, गरक गयो सनकाणी ॥ ४ ॥
सब सन्तन पर तन मन वारौं, चरण कमल लपटाणी ॥ ५ ॥
मीराँके प्रभु राख लई है, दासी अपणी जाणी ॥ ६ ॥

भजन

सीसोद्या राणो प्यालो म्हाने क्यूँ रे पठायो ॥ टेक ॥
भली बुरी तो मैं नहिं कीन्हीं राणो क्यूं हैं रिसायो ।
थाने म्हाने देह दीवी है ज्याँरो हरिगुण गायो ॥ १ ॥
कनक कटोरे ले विष घोल्यो दयाराम पंडो ल्यायो ।
अठी उठी तो मैं देख्यो कर चरणामृत प्यायो ॥ २ ॥
आज कालकी मैं नहि राणा जद्यो ब्रह्माण्ड छायो ।
मेढ़तियाँ घर जन्म लियो है मीराँ नाम कहायो ॥ ३ ॥
प्रह्लाद प्रतिज्ञा राखी, खम्भ फाड़ बेग आयो ।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर जनको विड़द बढ़ायो ॥ ४ ॥

भजन

बैदको सारो नहींरे माई बैदको नहिं सारो ॥ टेक ॥
कहत ललिता बैद बुलाऊँ आवै नन्दको प्यारो ।
वो आयां दूख नाहिं रहेगो मोहिं पतियारो ॥ १ ॥

बैद्य आयकर हाथ जो पकड़्यो, रग है भारो।
परम पुरुषकी लहर व्यापी, डस गयो कारो ॥ २ ॥
मोर चन्दो हाथ ले, हरि देत है डारो।
दासि मीराँ लाल गिरधर, विष कियो न्यारो ॥३ ॥

भजन

जबसे मोहिं नन्द नन्दन दृष्टी पड़्यो माई।
तबसे परलोक लोक कछु ना सुहाई ॥ १ ॥
मोरनकी चन्द्रकला शीश मुकुट सोहै ।
केशरको तिलक भाल तीन लोक मोहै ॥ २ ॥
कुन्डलकी अलक झलक कपोलन पर छाई।
मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई ॥ ३ ॥
कुटिल भृकुटि तिलक भाल चितवनमें लौना।
खञ्जन अरु मधुप मीन भुले मृगछौना ॥ ४ ॥
सुन्दर अति नासिका सुग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु भेष धरे, रूप अति विशेषा ॥ ५ ॥
अधर बिम्ब अरुण नैन मधुर मन्द हांसी।
दसन दमक दाड़िम दुति चमके चपलासो ॥ ६ ॥
छुद्र घन्ट किंकिनी अनूप धूनि सुहाई।
गिरिधर अंग अंग मीराँ बलि जाई ॥ ७ ॥

भजन

पिया म्हारे नैणा आगे रहज्यो ॥ टेक ॥
नैणा आगे रहज्यो म्हाने भूल मात जाज्यो ॥ १ ॥

भवसागर में बही जात हूँ, बेग म्हारी सुध लीज्यो ॥ २ ॥
राणाजी भेज्यो विषका प्याला, सो अमृत कर दीज्यो ॥ ३ ॥
मीरांके प्रभु गिरिधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीज्यो ॥ ४ ॥

भजन

स्वामी सब संसार के हो, सांचे श्री भगवान ॥ टेक ॥
स्थावर जंगम पावक पाणी, धरती बीच समान ।
सबमें महिमा तेरी देखी, कुदरतके कुरबान ॥ १ ॥
सुदामाके दारिद खोये, बालेकी पहिचान ।
दो मुट्ठी तंडुलकी चाबी, दीन्यो द्रव्य महान ॥ २ ॥
भारतमें अर्जुनके आगे, आप भये रथवान ।
उनने अपने कुलको देखा, छुट गये तीर कमान ॥ ३ ॥
ना कोई मारे ना कोई मरता, तेरा यह अज्ञान ।
चेतन जीव तो अजर अमर है, यह गीता को ज्ञान ॥ ४ ॥
मुझ पर तो प्रभु किरपा कीजे, बन्दी अपनी जान
मीरां गिरिधर शरणां तिहारी, लगै चरणमें ध्यान ॥ ५ ॥

भजन

पिया मोहिं आरत तेरी हो ॥ टेक ॥
आरत तेरे नामकी, मोहिं साँझ सबेरे हो ॥ १ ॥
या तनको दिवला करूँ, मनसा की बाती हो ।
तेल जलाऊँ प्रेमको, बालूं दिन राती हो ॥ २ ॥
पटियां पाऊँ गुरुज्ञान की, बुधि माँग सवारूँ हो ।
पिया तेरे कारणे, धन जोबन वारूँ हो ॥ ३ ॥

सेजड़िया बहु रँगिया, चँगा फूल बिछाया हो।
रैण गइ तारा गिणत, प्रभु अजहुँ न आया हो ॥ ४ ॥
आया सावण भादुवा, वर्षा ऋतु छाई हो।
श्याम पधारया सेजमें, सूती सैन जगाई हो ॥ ५ ॥
तुम हो पूरे साइयां, पूरा सुख दीजे हो।
मीरां व्याकुल बिरहिणी, अपणी कर लीजे हो ॥ ६ ॥

भजन

मीराँ लाग्यो रँग हरी, और न सब रँग अटक परी। टेक ॥
चूड़ो म्हारे तिलक अरु माला, सील बरत सिंगारो।
और सिंगार म्हारे, दाया न आवे, यो गुरुज्ञान हमारो ॥ १ ॥
कोई निन्दो कोइ बिन्दो म्हें तो, गुण गोविन्दका गास्यां।
जिन मारग म्हारा साध पधारे, उण मारग यहे जास्यां ॥ २॥
चोरी न करस्यां, जिव न सतास्याँ, कांई करसी म्हारो कोय।
गजसे उतरके खर नहिं चढ़स्यां, ये तो बात न होय ॥ ३ ॥
सती न होस्यां गिरधर गास्यां, म्हारो मन मोह्यो घणनामी।
जेठ बहुको नातो न राणाजी, हूं सेवक थे स्वामी ॥ ४ ॥
गिरिधर कंथ गिरधर धनि म्हारे, मात पिता वोइ भाई।
थे थारे म्हे म्हारे राणाजी, यूँ कहे मीराँबाई ॥ ५ ॥

भजन

राम तने रंग राची, राणा मैं तो साँवलिया रंग राची ॥ टेक
ताल पखावज मिरदंग बाजा साधों आगे नाची ॥ १ ॥
कोई कहे मीराँ भई बावरी, कोई कहे मदमाती ॥ २ ॥

बिषका प्याला राणा भर भेज्यो, अमृत कर आरोगी ॥३ ॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, जनम जनमकी दासी ॥ ४ ॥

भजन

मुझ अबलाने मोटी नीराँत थई सामलो घरेनु म्हारे सांचु रे ॥टेक
बाली घड़ाऊँ बीटलबर केरी, हार हरी मो म्हारे हिय रे।
चीन माल चतुरभुज चुड़लो सिद्ध सोयी घरे जइ ये रे ॥ १ ॥
झोझरिया जगजीवन केरा, किसन गला री कंठी रे।
बिलुवा घूँघरा राम नरायण, अनवट अन्तरजामी रे ॥ २ ॥
पेरी घड़ाऊँ पुरुसोतम केरी टीकम नामनूँ तालो रे।
कुञ्जी करुऊँ करूणान्दन केरी, त माँ गैणा नू मारूँ रे ॥'३ ॥
सासर बासो सजीने बैठे, अब नथी काँचु रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि नु चरणे जाँचू रे ॥ ४ ॥

भजन

गिरधर दुनिया दे छै बोल ॥ टेक ॥
गिरधर मेरा मैं गिरधर की, कहो तो बजाऊँ ढोल ॥ १ ॥
आप तो जाय द्वारिका छाये, हमकूं लिखिया जोग ॥ २ ॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पिछले जनमका कौल ॥ ३ ॥

भजन

सुण लीजे बिनती मोरी, मैं शरण गही प्रभु तेरी ॥ टेक ॥
तुम तो पतित अनेक उधारे, भवसागरसे तारे।
मैं सबका तो नाम न जानूं, कोई कोई भक्त बखाने ॥ १ ॥

अम्बरीख सुदामा नामा, प्रभु पहुंचाये निज धामा ।
ध्रुव जो पांच बरसको बालक, दरस दियो घनश्यामा ॥ २ ॥
धना भक्तका खेत जमाया, कबिरा बैल चराया ।
सबरीके जूठे फल खाये काज किया मन भाया ॥ ३ ॥
सदना औ सैना नाई को , तुम लीन्ह अपनाई ।
कर्मा की खिचड़ी तुम खाई गणिका पार लगाई ॥ ४ ॥
मीराँ प्रभु तुमरे रंग राती जानत सब दुनियाई ॥ ५ ।

भजन

कभी म्हारी गली आवरे, जियाकी तपत बुझावरे ।
म्हारे मोहना प्यारे ॥ टेक ॥
तेरे साँवले बदन पर, कई कोटि काम वारे ।
तेरी खूबीके दरश पै नैन तरसते म्हारे ॥ १ ॥
घायल फिरूँ तड़फती, पीड़ जाने नहिं कोई ।
जिस लागी पीड़ प्रेम की, जिन लाई जाने सोई ॥ २ ॥
जैसे जलके सोखे, मीन क्या जिवें बिचारे ।
कृपा कीजै दरश दीजे, मीराँ नन्दके दुलारे ॥ ३ ॥

भजन

करम गत टारे नाहिं टरे ॥टेक ॥
सतबादी हरिचन्दसे राजा, नीच घर नीर भरे ।
पाँच पाँडु अरु कुन्ती द्रोपदी हाड़ हिमालय जरे ॥ १ ॥
जज्ञ किया बलि लेण इन्द्रासन सो पाताल धरे ।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, विषसे अमृत करे ॥ २ ॥

राग आसा मांड तीनताल

जूनो थयु`रे देवल जूनो थयुं,

मारो हंमलो जानो ने नेवल जूनो थयुं ॥ टेक ॥

आरे काया रे हंसा, डोलवाने लागी रे,

पड़ी गया दाँत माँयली रेखुं तोरयूं ॥ १ ॥

तारे ने मारे हंसा, प्रीत्युँ बंधाणी रे

उड़ी गयी हंस पाँजरे पड़ी रे रह्य ॥ १ ॥

बाई मीराँ कहे छे प्रभ गिरिधरना गुन,

प्रेम नो प्यालो तमने पाऊँ ने पीऊँ ॥ ३ ॥

राग कालिंगड़ा—दीपचन्दी

नाहिं रे बिसारूं हरि, अन्तरमाँथी नहिं रे ॥ टेक ॥

जल जमुना पाणी रे जातां, शिर पर मटकी धरी ॥ १ ॥

आवताँ ने जाताँ, मारग बच्चे, अमुलख वस्तु जड़ी ॥ २ ॥

आवता ने जाताँ वृन्दारे बनमाँ, चरण तुमारे पड़ी ॥ ३ ॥

पीला पीताम्बर जरकशी जामा, केसर आड़ करी ॥ ४ ॥

मोरमुकुट काने रे कुंडल, मुख पर मोरली धरी ॥ ५ ॥

बाई मीराँ कहे प्रभु गिरिधरना गुण विठ्ठलबा ने वरी ॥ ६ ॥

राग झिंजोटी-तीताल

बोल माँ बोल माँ बोल माँ रे,

राधाकृष्ण बिना बीजुं बोल माँ ॥ टेक ॥

साकर शेलड़ीनो स्वाद तजीने,

कड़वो लींबड़ो घोल माँ रे ॥ १ ॥

चाँदा सूरजनु तेज तजी ने,
आंगिया संगा थे प्रीत जोड़ माँ रे ॥ २ ॥
हीरा माणेक झवेर तजी ने,
कथीर संगाते मणि तोल माँ रे ॥ ३ ॥
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर,
शरीर आप्युं सम तोल माँ रे ॥ ४ –

राग काफी--द्रुत दीपचन्दी

मुखडानी माया लागीरे, मोहन प्यारा ॥ टेक ॥
मुखड़ुँ में जोयूँ तारु सब जग थयु ं खारूं
सब मारूं रह्युं न्यारु ंरे ॥ १ ॥
संसारीडुँ सुख एवुं झाँझ वाना नीर जवूँ ।
तेने तुच्छ करी करीएरे ॥ २ ॥
मीराँबाई बलिहारी, आशा मने तक तारो ।
हवे हुँ तो बड़ भागी रे ॥ ३ ॥

भजन

यदुवर लगत है मोहिं प्यारो ॥ टेक ॥
मथुरामें हरि जन्म लियो है, गोकुलमें पग धारो ।
जन्मत ही पुतना गति दीनी अधम उधारन हारो ॥ १ ॥
यमुनाके तीरे धेनुं चरावे, ओढ़े कामलो कारो ।
सुन्दर बदन दल लोचन पीताम्बर पटवारी ॥ २ ॥
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल करमें मुरली धारी ।
शंख चक्र गदा पद्म विराजै सन्तनको रखवारो ॥ ३ ॥

जल डूबत ब्रज राखि लियौ है कर पर गिरिवर धारो।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर जीवन प्राण हमारो ॥ ४ ॥

भजन

कैसे आवौं हो लाल तेरी ब्रज नगरी गोकुल नगरी ॥ टेक ॥
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, बीच बहै जमुना गहरी।
पाँव धरयाँ मेरा पायल भीजै, कूदि परौं बहि जाऊँ सगरी ॥१॥
मैं दधि बेंचन जात बृन्दाबन मारगमें मोहन झगरी।
बरज यशोदा अपने लालको छीन लई मेरी नथली ॥ २ ॥
रहु रहु ग्वालिनि झूठ न बोलो, कान अकेलो तुम सगरी।
मेरो कन्हैया पाँच बरसका, तुम ग्वालिन अलमस्त भई ॥ ३ ॥
जाय पुकारो कंस राजसे, न्याय नहीं गोकुल नगरी।
वृन्दाबनकी कुँज गलिनमें, बाँह पकर राधे झगरी ॥ ४ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर साधु संग करि हम सुधरी ॥ ५ ॥

भजन

पिय इतनी बिनती सुण मोरी, कोइ कहियोरे जाय ॥ टेक ॥
औरन सूँ बतियाँ करत हो, हमसे रहे चित्त चोरी।
तुम बिन मेरे और न कोई, मैं शरणागत तोरी ॥ १ ॥
आवण कह गये अजहुँ न आये, दिवस रहे अब थोरी।
मीराँ कहै प्रभु कबरे मिलोगे, अरज करूँ कर जोरी ॥ २ ॥

भजन

भई हौं बावरी सुनके बाँसुरी ॥ टक ॥
श्रवण सुनत मोरी सुध बुध बिसरी, लगी रहत तामें मनकी गाँसुरी १

नेम धरम कौन कीनी मुरलिया कौन तिहारे पासुरी।
मीराँके प्रभु वशकर लीने सप्त सुरन ताननिकी फाँसुरी ॥ २ ॥

भजन

कछु लेना न देना मगन रहना ॥ टेक ॥
नाँय किसीको कानाँ सुनाणी, नाय किसीकूँ अपनी कहना ॥ १ ॥
गहरी गहरी नाव पूरानी, खेवटियेसूं मिलता रहना ॥ २ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, सांवराके चरणाँमें चित देना ॥ ३ ॥

भजन

बता दे सखि साँवरिया को डेरो किती दूर ॥ टेक ॥
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, बीच बहे यमुना पूर ॥ १ ॥
मथुराजीकी मस्त गुवालिन, मुखपर बरसे नूर ॥ २ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, साँवरे से मिलना जरूर ॥ ३ ॥

भजन

बेग पधारो साँवरा कठिन बनी है,
आप बिना म्हारो कुण धनी है ॥ टेक॥
दुखिया कूं देख देर मत कीजो, देर की बिरियाँ और घनी है ॥
दिन नहीं चैन रैन नहीं निद्रा, दुशमनके हिये हरस घनी है।
गहरी गहरी नदिया नाव पुरानी, पार कर घनश्याम धनी है ॥२॥
जमड़ाकी फौजाँ प्रभु आन पड़ी है बेग हरावो मोटा आप धनी है
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल बिच आन खड़ी है ॥३॥

भजन

रामा कहियेरे गोविन्द कहि मेरे ।। टेक ।।
कंकर हीरा एक सारसा हीरा किसीको कहिये रे ।
हीरा पण तो जद ही जानू महंगा मोल बिकइये रे ।। १ ।।
कोयल कागा एक सरसा कोयल किसको कहिये रे ।
कोयल पण तो जब ही जाणू मीठा वचन सुणइये रे ।। २ ।।
हंसा बुगला एक सरीखा हंसा किसकूं कहिये रे ।
हंसा पण तो जद ही जाणू चुग चुग मोती खइये रे ।। ३ ।।
जगत भगतके आवरे है भगत किसकूं कहिये रे ।
भगत पणो तो जब ही जाणू बोल सभी का सहिये रे ।। ४ ।।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर हर चरण चित दइये रे ।
द्वारकाके ठाकुरके सरणमें जाकर रहिये रे ।। ५ ।।

भजन

जावो कठेरे रामा खो अठे साँवलिया ।। ठेक ।।
नित काँई जावो नित काँई आवो नितका जाँयासे मान घटे ।। १ ।।
गोकुल बसबो फीकोई लागे, मथुरामें काँई लाडू बंटे ।।२।।
गोकुलमें काई धेनु चरावो मथुरामें काँई राज लटे ।।३।।
राधाई रुकमण और सतभामा कुब्जा काँई थारे संग पटे ।।४।।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर तुम सुमराँ सूँ संकट कटे ।।५।।

भजन

कोई कहियोरे मोहन आवणकी, आवणकी मन भावनकी ।।टेक।।
आप न आवे साँवरो पतिया न भेजे, वाण पड़ी ललचावनकी ।।१।।

यह दोय नैन कह्यो नहीं मानें, नदियां बहे जैसे सावनकी ॥२॥
क्या करूँ कित जाऊँ री सजनी, पाँख नहीं उड़जावनकी ॥३॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, चेरी भई तेरे पाँवनकी ॥४॥

प्रभाती

जागो मोहन प्यारे ललना, जागो बंसीवारे ।।टेक।।
रजनी बीती भोर भई है, घर घर खुले किंवारे ।
गोपी दधि मथन करियत है, कंगनके झिनकारे ॥१॥
उठो लालजी भोर भयो है, सुरनर ठाड़े द्वारे ।
ग्वाल बाल सब करत कोलाहल, जय जय शब्द उचारे ॥२॥
माखन रोटी हाथमें लिन्हीं, गउअनके रखवारे ।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, शरण आये कूँ त्यारे ॥३॥

राग कानड़ी

हो कानाँ किन गूँथी जुलफाँ कारियाँ । टेक॥
सुधर कला प्रवीन हाथन सूँ, जसुमति जूँ ने सँवारियाँ ।।१॥
जो तुम आवो मेरो बाखरियाँ, जरि राखूँ चन्दन किंवरियाँ ॥२॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, इन जुलफन पर वारियाँ ॥३॥

राग परज

गोकुलके बासी भलेहि आये, गोकुलके बासी ॥टेक॥
गोकुलकी नारी देखत, आनन्द सुखरासी ।
एक गावत एक नाचत, एक करत हाँसी ॥ १ ॥
पीताम्बरके फेंटा बांधे, अरगजा सुबासी ।
गिरिधर से सु नवल ठाकुर, मीराँ सी दासी ॥२॥

राग परज

जोहनें गुपाल फिरूँ, ऐसी आवत मनमें ।
अवलोकत बारिज बदन, बिवस भई तनमें ॥१॥
मुरली कर लकुट लेऊँ, पीत वसन धारूँ ।
पंछी गोप भेष मुकुट, गोधन संग चारूँ ॥२॥
हम भई गुल काम लता, वृन्दावन रैना ।
पसु पंछी मरकट मुनी श्रवन सुनत बैनाँ ॥३॥
गुरुजन कठिन कानि, कासों री कहिये ।
मीराँ प्रभु गिरिधर मिलि ऐसें ही रहिये ॥४॥

राग मारू

कोई स्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरै मटकिया डोले ॥टेक॥
दधिकी नांव बिसर गई ग्वालन, हरि ल्यो हारे ल्यो बोले ॥१॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, चेली भई बिन मोले ॥२॥
कृष्ण रूप छकी है ग्वालनि, औरहि औरे बोले ॥३॥

राग कानड़ी

बन्दे बन्दगी मत भूल ॥टेक॥
चार दिनां की कर ले खूबी ज्यूं दाड़िमरा फूल ॥१॥
आया था ए लोभके कारण मूल गमाया भूल ॥२॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, रहना वे हजूर ॥३॥

राग सोरठ

थाने काँई काँई कह समझाऊँ, म्हारा बाल्हा गिरधारी ॥ टेक ॥
पूर्व जनमकी प्रीति हमारी, अब नहीं जात निवारी ॥ १ ॥

सुन्दर बदन जोवते सजनी, प्रीति भई छे भारी।
म्हारे घरे पधारो गिरिधर, मंगल गावे नारी ॥ २ ॥
मोती चौक पूराऊँ वाल्हा, तन मन तोपर वारी।
म्हारो सगपण तो सूं साँवलिया, जग सु नहीं विचारी ॥ ३ ॥
मीराँ कहे गोपिनको वाल्हो, हम सूँ भयो ब्रह्मचारी।
चरण सरण है दासी तुम्हारी, पलक न कीजै न्यारी ॥ ४ ॥

राग काफी

आज अनारी ले गयो सारी, बैठी कदमकी डारी हे माय ॥
म्हारी गैल पर्‌यो गिरधारी, हे माय आज अनारी ले गयो सारी ॥
मैं जल जमुना भरन गई थी, आगयो कृष्णमुरारी हे माय ॥ १ ॥
ले गयो सारी अनारी म्हारी, जलमें ऊभी उघारी हे माय ॥ २ ॥
सखी साइनि मोरी हँसत है, हँसि हँसि दे मोहि तारी हे माय ॥३॥
सास बुरी अरु नणद हठीली, लरि लरि दे मोहि गारी हे माय ॥ ४ ॥
मीराँ के प्रभु गिरिधरनागर, चरण कमलकी वारी हे माय ॥ ५ ॥

*

शब्दार्थ-दीपिका

हरि—हरण करनेवाला। श्रीकृष्णको हरि कहकर कहा गया है, कि तुम अपने भक्तोंके कष्टको हर लो। भीर-कष्ट। द्रौपदी···चीर= कौरवोंकी सभामें जब दुःशासन द्वारा द्रौपदी नग्न की जारही थी, उस समय कहा जाता है कि श्रीकृष्णने अपनी योगमायाके सहारे द्रौपदीके चीरको इतना बढ़ा दिया कि दुःशासन खींचते-खींचते हार गया, पर उसका अन्त न लगा। भक्त···शरीर=प्रह्लादके लिये विष्णु ने नृसिंह अवतार धारण किया था। दुःख···पीर=जहाँ दुःख है वहीं पीर अर्थात् प्रेम-वेदना, परमात्मा और गुरुका वास है, सूफ़ीमत का यहाँ प्रभाव है।

रामहिराम=मीराके राम तुलसीके राम नहीं, ये कृष्ण ही हैं; विष्णुके दोनों अवतार हैं-अतएव अभिन्न हैं। खत=शरीर; माया; कार्यावली। कनक-कटोरे=सोनेका प्याला। नटै=नठना; नकारना; इनकार करना। मीराँको राणा द्वारा विषका प्याला भेजा गया था। मीराँने उसे अमृत समझकर पी लिया; इसकी ओर निर्देस है। हरि अविनाशी=श्रीकृष्ण अविनाशी हैं इसीलिये मेरा तन-मन उनके अनुकूल है; नहीं तो "ऐसे वर को क्या करूँ जो जनमे मरि जाय।"

मँद-भागन = मँद-भागिनी; अभागिनी। पनिहारीका पनिहारन ठठेर का ठठेरन जिस प्रकार स्त्रीलिंग होता है उसी प्रकार अभागा का अभागन, मँदभागीका मँद-भागन हुआ है। करम-अभागन = कर्मका छूछा-जिसने सत्कर्म नहीं किया। कीरत=कीर्ति (सं); यश; गुण। मनकूँ=मनको। सतगुरुसूँ=सतगुरु से। आत्मदमन भारतीय साधनाकी आदि शिला है। दुरमत=दुर्मति (सं) दुर्बुद्धि अर्थात् षड्रिपु-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर।

सुरति = साधक जब इन्द्रियोंको अन्तर्मुख कर लेता है और बाह्य जगतसे उसका जब सम्बन्ध नहीं रह जाता तथा अन्तरात्मामें परमात्माका या इष्टदेवका ध्यान करता है, अपनी सुध-बुध खो इसीकी अन्तर्लीनतामें आनन्दका अनुभव करता, अनहद नाद सुनता और महाप्राणताका अनुभव करता है, तब साधककी वह अवस्था, सुरतिकी अवस्था कहलाती है। निर्गुणपंथी साधु उसी सुरति की अवस्थामें अपनेको ब्रह्मलीन हुआ समझते हैं। कबीरने उस सुरतिकी अवस्थाका निर्देश अपने पदोंमें किया है। तब···जगाऊँ = भारतीय साधनामें आत्मसमर्पण और आत्मबलिदानकी अभिलाषा सर्वत्र मिलेगी। मीराँने तो अपनी इस अभिलाषाका अभिव्यञ्जन अनेक स्थानोंपर किया है; "या तनको दिवला करूँ, मनकी बाती हो। तेल जलाऊँ प्रेमकी, जलूँ दिन राती हो।"

पृष्ट ५६—

निरत···पाऊँ = अपने अस्तित्वको प्रियके अस्तित्वमें अन्तर्हित कर देना या भुला देना प्रेमकी पराकाष्ठा है।

बसो···नन्दलाल = मीराँ कृष्णकी नटवर प्रौढ़ श्यामल स्वरूपकी

सुन्दरतापर निछावर है। इसके कृष्ण एक सुन्दर मनोमोहक नवयुवक हैं। मीराँका प्रेम माधुर्यभावका था, इसीलिये उसका ध्यान श्री कृष्ण की लोक-कल्याणकारी लीलाओं की ओर नहीं गया इसके अतिरिक्त वह कृष्णको पतिके रूपमें देखना चाहती है सूरका सख्य भाव, और तुलसीका दास्यभाव इससे नहीं तुलता। तुलसीके राममें माधुर्य है पर उनके हाथों में धनुष-बाण उनकी कर्तव्यपरायणता और दुष्टदर्पहारिताके परिचायक है किन्तु मीराँके कृष्णमें लावण्य है मोहिनी है और आकर्षण है उनके हाथकी मुरली उनकी रसिकता आनन्द अह्लादिता और प्रेमोर्ज्जस्विताकी परिचायिका है पत्नी अपने पति के न तो बालरूप पर लीन हुआ करती और न गार्हस्थ्यधर्म पालन करनेवालेके रूपमें देखा चाहती है, बल्कि वह अपने पतिको अक्षुण युवारूपमें देखना चाहती है। दाम्पत्यरति बालक-बालिका की रति नहीं, गुरु-शिष्यका भक्ति-वात्सल्य नहीं, स्वामि-सेवकका रक्ष्य-रक्षण नहीं या राष्ट्र भक्त नेताकी सामाजिकता या सम्यवादिता नहीं वह युवा युवतीकी रति है। भक्त-बछल = (भक्तवत्सल-सं) भक्तिमें तीन प्रकारका सम्बन्ध बताया गया है गाय और बछड़ेका सम्बन्ध, बनरी और उसके बच्चेका सम्बन्ध तथा बिल्ली और उसके बच्चे का सम्बन्ध। पहलेमें दूध पीनेको जितनी लालसा बछड़ेके मन में होती है उतनी ही गायके मनमें पिलानेकी भी दूसरेमें बच्चा जब शरणमें आजाता है तब मा (बनरी) अपने पेटमें सटा कर ढोनेको तैयार हो जाती है तीसरेमें बच्चा शरणमें आये या नहीं चेष्टा करे या नहीं पर माँ (बिल्ली) दाँत चुभनेकी परवा न कर बच्चेको सुर-

च्छित स्थानपर रख आती है। इस प्रकार पहले में ब्रह्म और जीव की पारस्परिक मिलनोत्कण्ठा दूसरेमें जीवकी चेष्टा और ब्रह्मकी स्वीकृति तथा तीसरेमें एकमात्र ब्रह्मकी अभीप्सा व्यंग है निर्गुण सन्तोंने (कबीर, दादू आदि) पहली भावनाका तथा सगुण भक्तोंने दूसरी और तीसरी भावनाका स्थापन और प्रतिपादन किया। मीराँकी भावना तीसरे प्रकारकी थी अर्थात मुझको कष्ट देकर भी अपनी प्रेयसी-निकटतमा करके कृत—कृत्य करो। सूर आदि पुष्टी मार्गी जितने कवि हुए प्राय. सबने इसी भावना को अपने हृदयमें स्थान दिया था।

कान्ह-कृष्ण (सं) ; कान्हा-कान्ह-कन्हैया। श्यामा = सुन्दरी राधा "शीते सुखोष्ण सर्वाङ्गी, ग्रीष्मे च सुखशीतला। तप्ताकाञ्चन वर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते।"

लगन = प्रेम। प्रायः सभी सन्तकवियोंने गुरुकी महिमा गाई है निर्गुणमार्गी सन्तोंने तो गुरुको बड़ा ही ऊँचा स्थान दिया है। मीराँबाई पर निर्गुण सन्तोंका प्रभाव कम नहीं है भवसागर = जीवन-मरण।

पृष्ठ ५७

अधम = पापी। साखी = साक्षी(सं) = प्रमाण। रसना = जीभ घना = अधिक। सिवरी = शवरी।

मीराँबाई पर तुलसीदासकी भक्तिका प्रभाव जान पड़ता है। स्वामी-सेवक भावसे पूजनेवाले प्रायः सभी भक्तोंकी अभिलाषा-"हरि चरननकी' रही है और मीराँ भी उसीकी अभिलाषा करती है।

परसि=स्पर्श,छूना । त्रिबिध=आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक, भौतिक, दैहिक और दैविक । ज्वाला=दुःख ।

राखि=रक्खी । सिरी=(श्री) सौन्दर्य, ऐश्वर्य, छटा । घरन=गृहिणी (सं), स्त्री, अहिल्या । मघवा=इन्द्र । पाठशुद्धि-दासि मीराँ लालगिरिधर, अगम तारनतरन । अगम=समुद्र । तारन=पारलगानेवाला । तरन=तरणी (सं) नौका ।

पृष्ट ५८—

मीराँ पर कबीरका प्रभाव स्पष्ट है । सत्संगकी महिमा सबसे अधिक कबीरने ही गाई है । यद्यपि तुलसीदासने भी अपनी रामायणमें सत्सङ्गकी महिमा अनेक स्थलोंपर बतलाई है । हरी चरचा=ईश्वरकी चर्चा, भगवद्भजन; गुणगान । ताहि···भीजै=उसके रङ्गमें भीज जाना, तदाम्यभावका अनुभव, परमात्ममय हो जाना ।

अविनाशी=नाश न होनेवाला; अजर-अमर । जेताई=जोकुछ दीसे=दीखता । धरनि=पृथ्वी । गगन=आकास । ते ताई=वह जासी=जाएगा । करवतकासी=काशीकरवट; काशीवास; तीर्थाटन । प्रसिद्ध है कि काशीमें एक स्थान पर आरी लगी थी । जिस पर गला काट देनेसे लोग समझते थे कि तुरत मुक्ति मिल जाती है । चहर=बया चिड़िया । यह संसार चिड़ियोंके खेल जैसा है, जो सांझ होते ही अपने बसेरेको चल देती है । बाजी=खेल । भगवा=गेरुआवस्त्र । उलट=लौटकर ।

यमकी फांसी=यमका फंदा; जन्म मरणका पचड़ा । कबीरने भी बाहरी आडम्बरकी निन्दाकी है, 'दाढ़ीबढ़ाय योगी होइगेलै बकरा'

और 'पाथर पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहाड़'। मीराँ भी इसी वाह्य आडम्बरकी निन्दा करती है।

बिरछे=वृक्ष। औखी=करारी। चलत···पुकार=जाते-जाते कह जाते हैं क्योंकि जो जाता है वह आता नहीं, इसलिये जानेके समय ही परवर्ती लोगोंको मुमुर्षु सन्त-महात्मा यह सन्देश दे जाते हैं। कबीरे ने एक स्थान पर कहा है 'काकौं हौं पांती लिखौं काकौं कहौं संदेश। जे जे गे ते नहिं फिरै, वहि प्रीतमके देश।'

पृष्ठ ५६

म्हांरी—मेरी। अरजी—अर्ज़, विनय। भवसागर—संसाररूपी समुद्र, जन्म-मरणकी पुनरावृत्ति। थांरी—तेरी। मरजी=इच्छा; कृपा। मतलबके गरजी=स्वार्थी। चरन···मरजी=जीवात्माका मानवजन्म परमात्मवियोगका परिणाम है। इस वियोगसे छुटकारा पानेके लिये अर्थात् परमात्म-लाभके लिये जीव लालायित रहता है, परन्तु इन्द्रियाँ मनोविकार, सांसारिक विषय-भोग जो माया-रूप हैं, वे जीव को परमात्मलाभ होने देनेसे रोकते हैं इन वाधकोंसे पिंड तब तक नहीं छूटता जब तक परमात्माकी अभीप्सा नहीं होती। परमात्माको इसी अभीप्साको वल्लभाचार्य्यने 'पुष्टी' नाम दिया है और उसके माननेवाले अष्टछापके कवि आदि पुष्टिमार्गी हैं मीराँकी इस रचनामें उसी पुष्टिमार्गी की झलक है।

भाखत=कहते हैं। सुजान=चतुर पंडित। जहान=संसार थांरी=तुम्हारी।

जाज्योजी=जाओजी। नांय=नहीं। सिरताज=शिरोमणी; सिर

का मुकुट। समरथ (सं) सामर्थ्य = सामर्थ्यवान्। थारी = तुम्हारी किणरे = किधर। हिवड़ारो = हृदयका (हृदय सं) हिय, स्वार्थे 'ड़' (उपभ्रंश) = हियड़ा। इबके = अबकी बार। यहाँ मीराँ अपनी शक्ति, शील और सौन्दर्य सबको कृष्णार्पित करके निःस्व हो बैठी है आज वह अबला है जिसका बल कृष्ण, आज वह गुणहीना है, जिसका गुण कृष्ण, आज उसकी सामर्थ्य भी श्रीकृष्णमें अन्तर्हित है। वाह्याभूषणही नहीं, हृदयाभूषण भी आज मीराँका कृष्ण ही है। उसकी प्रतिष्ठा, लज्जा जो कुछ है, कृष्णही है। 'त्वमेव सर्वम् मम देव देव।'

पृष्ठ ६०—

करुं छँ = करती हूँ। भव = संसार। सोग = कष्ट। अष्टकरम = अष्टकर्म (सं) परिवारिक और सामाजिक कर्तव्य; सांसारिक झंझट अष्टकर्म = अष्टयोग; साधनाके अष्टांग-यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, समाहार, ध्यान, धारणा, समाधि। लखचौरासीधार = चौरासी लाख धाराएँ अर्थात् चौरासी लाख योनियाँ। आवागमन = आना-जाना, जन्म-मरण। निवार-निर्वारण (सं) = बचाओ। मीराँको विश्वास था कि वह अपने हृदयदेवको सांसारिक मायाजालमें और इस मानव शरीरमें नहीं पा सकेगी।

थे = तुम। दीनानाथ = गरीबपरवर; दीनबन्धु; दुखियोंके सहारे नाजिर = सामने। कदको = कबकी। माजनियाँ = सहेलियाँ; चम्पा और चमेली नामक दो सहचरियोंको राणाने मीराँको अपनी मनोनीत राह पर लानेके लिये भेजा था। कदाचित् मीराँका निर्देश इन्हीं सखियों की ओर है। समंदअड़ो-पाठान्तर-समुन्दरी = समुद्र में। निदरा = नींद, निद्रा।

मीराँ···दासी बनाओ = यह पद मीराँ रचित जान नहीं पड़ता। इसकी भाषा खड़ी बोली है।

पृष्ठ ६१—

उधारे = उद्धार किया। भवसागर = संसाररूपी समुद्र। उचारे = उच्चारण करते हैं। निज धामा = अपनेधाम अर्थात् बृन्दावन; स्वर्ग। स्वर्गकी कल्पना विभिन्न मार्गके भक्तोंने विभिन्न स्थानोंमें की है। रामभक्तोंके लिये अयोध्या और कृष्ण भक्तोंके लिये बृन्दावन स्वर्ग है। सगुणोपासक भक्त तदात्म्यलाभकी कामना नहीं करते, ईश्वर-सिद्धिके लिये नहीं मरते, प्रत्युत् वे अपने भावके अनुकूल इष्टदेव निकटतम स्थान पानेकी अभिलाषा करते हैं। सेव्य-सेवकभावसे पूजनेवाले चरणतल, चरण-रज, पाद-पीठ और दासोंकी श्रेणीमें चवँर डुलाते या अन्य प्रकारकी परिचर्या करते हुए अपनेको इष्टदेव के निकट देखना चाहते हैं। सख्यभावसे पूजनेवाले भगवद्भक्त इष्टदेवके साथ रहना चाहते अर्थात् इष्टदेवका साहचर्य जिनप्राणियों या पदार्थोंसे हो उनके रूपमें अथवा उनके साथ अपनेको देखना चाहते हैं। मीराँ पति-भावसे पूजती है; इसलिये वह धाम चाहती है।

रंग राती = रंगमें रंगी हुई।

पृष्ठ ६२—

रजनी = रात। रैन = रात। दिवस···बैना = कबीरदासनेभी कुछ ऐसा ही लिखा है—'दिन नहिं चैन रात नहिं निदिया तड़प तड़पके भोर किया।' तपत = तपन; ताप; दुःख, पीड़ा; विरहाग्नि। अन्तर-जामी = अन्तरमें प्रवेश करनेवाला; हृदयका हाल जानने वाला।

मीराँने अपने इष्टदेवका सम्बोधन सार्थक शब्दों द्वाराही किया है। पत्नी अपने हृदयकी प्रेमवेदना या वियोगकी व्यथा सबसे नहीं कहती; अपने पतिसे ही कह सकती है। मीराँके पति उसके परे नहीं, उसमें ही है। अतः उसे विरहजनित आत्मनिवेदन करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। राधा और कृष्णके प्रेम-मिलन और वियोग के समय भाव, संकेत या संवादका सूचना या विज्ञापन करनेको माध्यमकी आवश्यकता थी। इसीलिये उनकी प्रेम-कथाका विन्यास दूतियों द्वारा हुआ, पर मीराँ अपने प्रेमकी बात अपने आप करती है उसे माध्यमकी आवश्यकता नहीं है, केवल 'अन्तर्यामी' कह कर सन्तोषकर लेती या उतना कहना ही अलम् समझती है। इसीलिये मीराँने अन्तर्यामो कह कर अपनी सारी प्रेमवेदना प्रकट कर दी। 'मीरा दासी जनम जनमको'—कहा जाता है, कि मीराँ गोकुलकी उन गोपियोंमें से एक का अवतार थी, जिन गोपियोंके साथ श्रीकृष्णने रास रचा था।

सरेगी = निभाते ही बनेगा। अपरबल = प्रबल, अगाध निर-धारा = अनाधार।

मीठा बोला = मधुरभाषी। थांरी··· भला = तुम्हारे आनेसे भला होगा। हेला = आलिंगन। तमोला = पान। मीराँ सोलहों शृङ्गार छोड़कर श्रीकृष्णकी आराधनामें रत है। कर··· कपोला = प्रतीक्षाके समयका हाव कितना अनुकूल है—गाल पर हाथ धरे बैठी है। कल = चैन। दिलकी घूँडी = हृदय-गांठ, तर्क-वितर्क; कर्त्तव्या-कर्त्तव्यकी दुविधा तुम··· पड़ताहै = 'एक सरि भवन पिया बिनु रे मोरा रहलो न जाय।'—विद्यापति

पृष्ठ ६३—

थारे=तेरे। रंगराती=रंगमें रंगी, प्रेममें सराबोर। पाती-पत्रिका (सं) पत्तिआ (प्रा); पतिया; पाती=पत्र; चिट्ठी। रोल=आनन्दालाप। प्रियसे तात्पर्य श्रीकृष्णसे है जो परब्रह्म हैं और जीव जिसका अंश है अथच अन्तरात्मा ही मीराँका इष्टदेव हुआ। इसीलिये कहा—'मेरा पिया मेरे हृदय बसत है।' झुरमुठ=झाड़ी, कुञ्ज। चूवा=चोआ। रमवा=रमण। मद=शराब। अहमत्व=अहंकार मीराँ को अहंकार हो तो किस बुत्ते पर? उसका 'अपना'—है ही क्या? मनसा=चित्तबृति। बाल रही=जल रही! प्रेमयोगका अपूर्व साधन, ऐसा उपादन शुष्क वैराग्यमें कहाँ! जाऊँनी=नहीं जाती। पीहरिये=पीहरको, पितृगृह (सं) पिअघर=पीहर, नैहर सासरिये=ससुराल। सूँ=से। सैन=दृष्टि। सं० १६०० के लगभग जब मीराँ द्वारकामें रणछोडजी की पूजा-अर्चनामें समय काट रही थी उस समय उदयसिंहने उसे द्वारकासे लौटा लानेका प्रयत्न किया इधर मेड़तेके जयमलजीने भी बुलावा भेजा। कदाचित् यह पद उन दोनोंके आग्रहको अस्वीकार करते हुए मीराँने लिखा हो।

सीसोद्यो=सीसोदिया; चित्तौड़के राणा। म्हारो=मेरा। कांई=क्या। करलेसी=कर लेगा। म्हे=मैं। गास्याँ=गाती हूँ। वाँरो=उसका। रखासी=रखेगा। किठे=कहाँ। जास्याँ-जाऊंगी काणकानि=प्रतिष्ठा; मर्यादा, परवाह। राम नाम···तिर जास्याँ से मिलता-जुलता भाव 'राम नाम कर लै करुआरा, भवसागर नर उतरहिं पारा।'

पृष्ठ ६४—

सुधबुद्ध = सुध-बुध, होश-हवास, चेतना। यदि पहली पंक्ति हटाकर पढ़े तो यह पद मनहरण कवित हो जाता है।

पृष्ठ ६५—

अमोलक = अमूल्य; बेशकीमती। जनम···पूंजी = गुरुकी दीक्षा; राम नामका उपदेश; जीवको मिला हुआ ब्रह्मांश। दिन-दिन बढ़त सवाई, रामधन कबहुं न लागत काई।' जनम-जनम···जस पायो जीवको जो ब्रह्मका अंश और नैसर्गिक-गुण धरोहरके रूपमें मिला उसे उसने सांसारिक मायाजालमें फँसकर गँवा दिया। यद्यपि उस धरोहरको कोई हड़प नहीं सकता उसका अस्तित्व विचलित नहीं होता वह अक्षुण्ण है तथापि अज्ञानके कारण जीव अपनी इस अमूल्य निधिको पहचान नहीं पाता। उस 'सत' की पहचाननेके लिये और उस सतका 'परम सत' से मिलानेके लिये उसे उर्ध्वोन्मुख करनेके लिये गुरूकी आवश्यकता है गुरूने ज्योंही दीक्षा दी, ज्ञान का दीपक जलाया त्योंहीं सांसारिक मायाजालसे जीव छुटकारा पा जाता है ब्रह्मलीन हो, इष्टदेवका सामीप्यलाभ कर साधक और भक्त चिदानन्दको प्राप्त होता और अपने जीवनको सार्थक कर 'कीर्त्तिर्यस्य स जीवती' के रूपमें अमर हो जाता है।

लौ = लगन; प्रेम चित; ध्यान। पाठशुद्धि = कटि कोपीन कसै। श्याम···वसै = इसपर गौराङ्ग महाप्रभु चैतन्यका प्रभाव जान पड़ता है चैतन्यदेवने भाव-प्रवाहमें रम कर कृष्ण-कीर्तनकी प्रथा चलाई उनकी दृष्टिमें भगवान्‌की प्रधान विभूति प्रेम, आनन्द और सुन्दरता

ही थी। अतएव उसीको उन्होंने वैयक्तिक साधनाका साध्य माना और जनताके प्रेमपरायण-हृदयमें उस अनुभूतिको पूर्णतः रमनेका स्थान मिला। मीराँ भी इस प्रवाहमें कदाचित बही या भावसाम्य के कारण चैतन्यके प्रति सज्जनोपम कृतान्जली अर्पित करती हुई उसने इस पदकी रचना की।

पृष्ठ ६६—

अटारिया=अट्टालिका, महल; राजप्रसाद; सतूलोक। किंवड़िय=किवाड़, प्रेम द्वार। पंचरंगी=पाँच रंगकी, पञ्चतत्व, पञ्चतन्मात्रा। सुमिरन=सुमरनी, नाम-माला। सुखमणा=प्रसन्नमनसे, चिरानन्द में। घरी-घटिका, मुहूर्त, घड़ी। सरी-चलना, बनपड़ना, चलना। सेज···घरी=उठ बधाव करु मोनभरी सजनी अब आए ल घर नाह। बिद्यापती—

हेली-सखी। बदनचन्द=मुखचन्द्र। पर-हथ=दूसरेके हाथ। नैननि···पीजै=नेत्रोंसे सौन्दर्य-रस का पान करें। सलोनो-सलावण्य (सं) सुन्दर। जीजै-जीवें। रीजै-रीझे, प्रसन्न होवे।

पृष्ठ ६७—

बरजी=बर्जन, मनाही। जगते=संसारसे। सेती-से।

नेहरा=स्नेह, प्रेम। गृह व्यौहार=लौकिक व्यवहार, घरका काम काज। पारधि-व्याधा, शिकारी। तृतीय पदांशमें दोहेका लय है। पानी···सुमाइ=प्रेय नहीं समझता कि उसके प्रेमीको उसकी अनु-रक्ति-विरक्ति कितनी सुखद-दुःखद है। प्रेमकी पीरको आश्रय

समझता है आलम्बन नहीं, क्योंकि प्रेमका बीज जमता है प्रेमीके हृदयमें नहीं। प्रेयके हृदयमें तो बीज अंकुरित, पल्लवित, मुकलित कुसुमित और सुफलित होनेके उपरान्त ही पुनर्वपित होता है। यदि प्रेम फलित न हुआ या फलित होनेके पहले ही आलम्बन आश्रयसे विदूर हो गया और प्रेम-वृक्ष शाखा—प्रशाखाएँ वहाँ तक पहुंच न सकीं तो आलम्बनमें प्रेमीके हृदयका प्रतिबिम्ब क्यों कर पड़ सकता है? ऐसी अवस्थामें यदि प्रेय नैसर्गिक-शक्ति लिये न हुआ तो प्रेमीका दुःख प्रेमी का ही रह जाता है। प्रेम उसका भागी नहीं होता। सचमुच प्यार का मुल्य प्रेमी चुकाता है, प्यारा नहीं। प्यारा तो प्यारका शोभन अंश ही चूसता है; अशोभनको उपेक्षित दृष्टिसे ही देखकर छोड़ देता है कहावत भी है—'जाके पाँव न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई।'

पानी मिलिगयो रंग=जीव जब ब्रह्ममें मिल जाता है तो उसका ब्रह्मसे पृथक कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। कोई उसे पृथक कर भी नहीं सकता। रंग जब पानीमें मिल जाता है तो उसका पानीसे पृथक कोई अस्तित्व नहीं रहता। ।उसकी सत्ताको पानीसे हम लाख चेष्टा करके भी अलग नहीं कर सकते।

पृष्ठ ६८

म्हारो-मेरा। सांची-सच्चा। वांके=उसके। रिझाऊँ=प्रसन्न करूँ। तितहूँ=वहीं।—'जाहि विधि राखे राम तहि विधि रहिये'—तुलसी। जैसे राखहु वैसेहि रहौं—सूरदास। इष्टदेव या प्रेय जिस वेशमें मिले या जो वेश उसे प्रिय हो वही वेश भक्त या प्रेमीकोप्रिय है।

पिया···रांचूंगी=प्रियतमके निकटतम होनेकी उत्कंठा प्रत्येक प्रियतमाको होती है। प्रियके साथ रहने, खाने-पीने और उठने-बैठने की आकांक्षा प्रत्येक प्रेमीको होना स्वाभाविक है। रसखानने भी तो इससे प्रेरित होकर लिखा है—"मानुष हौं तो वहीं रसखान, बसौं व्रजगोकुल गाँवके ग्वारन" आदि।

सुरत=लगन, प्रेम, अनुरक्ति। सुहागण=सौभागिनी, सुहागिनी सधवा। सुरता=प्रेम करने वाली प्रेमिका। नार=नारी, स्त्री। लगनी=लगन। बहार=बसन्त ऋतु, काम्य मुहूर्त। पावण=पाहुना, अतिथि। सुरमो=अञ्जन, सुरमा। परलो=दूसरा। मैं जान्यो···विगोय=मैं समझती थी कि भगवान् को मैंने ठग लिया उसके विराट् निराकार और अनुभवगम्य स्वरूपको सूक्ष्म, साकार और गोचर करके अपने संकीर्ण हृदय—मंदिरमें स्थापित कर लिया। इतना करके भी मैं स्वयं ठगी गई, भगवानकी बाजी रही। बिन्दु जिस प्रकार सागरमें विलीन हो जाता है उसी प्रकार उसने मेरी सत्ताको अपनी महात्तामें अन्तर्भुक्त कर लिया। मैं (जीव) अपना अस्तित्व उस (ब्रह्म) के अस्तित्वसे भिन्न न रख सकी। उसकी सत्तामें मेरी महत्ताकी इयत्ता हो गई। चौरासी लाखका मोर्चा क्षण भरमें रफूचक्कर हो गया। चौरासी लाख योनियोंमें भरमना बन्द हुआ; जीवन-मरण—भवबन्धनसे पिंड छूटा।

मीराँके ऐहिक-पति मर चुके, वह बिधवा हुई, पर ऐसे वरको हो जाय' के कारण वैधव्य-दुःखका अनुभव उसे न हुआ। वह अपने को सधवा ही समझती रही, क्योंकि—'सुरत···नार।'

पृष्ठ ६६—

पुरबली = पुरानी, पूर्वकी। कांई = क्या। मीराँ गोपीका अवतार मानी जाती है। गोपियाँ जनकपुरकी उन किशोरियोंका अवतार मानी जाती हैं जो राम-जानकी-परिणयके समय राम पर मुग्ध हुई थीं और जिनके हार्दिकभावको ताड़, रामने कृष्णावतारमें मनो-कामन पूर्ण करनेका वचन दिया था। इसी लिये मीराँने 'मेरो जनम-जनमको साथी' आदि उपर्युक्त पद कहे हैं। हिवाड़ो = हृदय। म्हाने = मुझे।

नींदड़ली = नींद। और = दूसरा, कृष्ण, परमात्मा। बासक = बासुकी, सर्प। छै = है। 'सांप पियरा राणां भेज्या···सालिग्राम गई पाय'। राठौड़ारी = राठोर की, राष्ट्रकूटवंशीया। धीयड़ी = बेटी गरीबनिवाज = दीनोंकी रक्षा करनेवाले, अशरण-शरण, दीनबन्धु।

पष्ठ ७०—

हेरी = हेली, सखी। गगन-मंडल = आकाश शून्य, स्वर्ग। दरद···सांवलिय होय—"अगर पूछो तो कहदें आपकी आँखोंको क्या समझे, सिता-सिंदूर-मृग मद-युक्त अदभुत् कुछ दवा समझे।"

विनु हरी लख उपचाह रे हिय दुःख न मेटाय।

—विद्यापति

प्रेमकी पीर प्रेयकी प्राप्तिसे ही जा सकती है। इस मार्गमें सारी साधना साध होकर लय पा जाती है। अतएव, दर्दये इश्क की दवा दीदार' ही है। प्रेमानुभूति और प्रेम-साधनाको तीव्रतर करके दिखाने की चेष्टा सभी प्रेम-योगियोंने की है। सबकी चेष्टा

एक नहीं भिन्न-भिन्न है। मीराँकी चेष्टा बिरल है, क्योंकि अन्य कवियों की तरह उस की वेदना उधार ली हुई नहीं, स्वानुभूतिकी जाया है। सूली ऊपर सेज ह्मारी—'यह प्रेमको पंथ करारो सखी तलवारकी धार पै धावनो है।'—बोधा

मैं तो···कीजोजी=प्रेमाशंकाका भाव ऐसा अन्यत्र दुर्लभ है। रामावतारमें जानकीकी सहेलियोंको भगवद्दर्शन प्राप्त हुआ। कृष्णावतार में गोपियोंके रूपमें रासमें उनका मिलन हुआ। मीराँ भी उन्हीं गोपियोंमें थी। वह मिलन चिरकालीन न रह सका। इष्टकी प्रतिज्ञा-पूर्तिपर मीराँको प्रमाणीकृत विश्वास है, अतएव उस का कृष्णसे पुनर्मिलन होगा—सन्देह की सम्भावनासे परे है। किन्तु विछोह रामावतारमें हुआ, पुनः कृष्णअवतारमें भी हुआ और मीराँ तज्जनित वेदनाका अनुभव आज भी कर रही है। इसलिये इसका पुनर्वियोग होगा यह आशंका अस्वाभाविक नहीं है।

आवड़ै=सुहाता है। धान-धान्य (सं)=शस्य; फसल; अन्न सांसारिक वस्तु। झूरतां=तरसता, कोसता। जो···कोय='प्रीति करि काहू सुख न लहे'—सूर। कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार। नेजा भाला तीर कोउ, कहत अनोखी ढार। अमी=खड़ी।

पृष्ठ ७१

बौरी=पगली। कमठ=कछुआ। दादुर=मेढ़क। औषध··· बौराय='जाना है जाओ, जरा रहके जाना, मुझे दर्दे दिलकी दवा कहके जाना नज़र।' कमठ···उरजाय=जिस प्रकार कछुए और मेढ़क जलमें ही उपजते, जलमेंही रहते हैं, किन्तु जलसे विलग

होकर वे उतने खिन्न नहीं होते जितनी मछली होती है। उसी प्रकार मैं भी प्रेममें पली और प्रेममें ही रहूंगी। मछलीका जीवन जल पर निर्भर है, उसकी तड़प जलसे ही मिटती है उसी प्रकार मेरी जलन तब तक नहीं जा सकती जबतक तुम न मिलो।

नसानी = नष्ट होना, चला जाना। सखियन = चम्पा-चमेली जो सुधारनेको भेजी गई थी। अन्तर वेदन = आन्तरिक दुःख दिल की कसक। ज्यों···बिसरानी हो = प्रेमकी तीव्रता प्रदर्शित करनेके लिये मीराँने चातक और मछलीकी ही उपमासे काम लिया है। जिस प्रकार चातक नदी, झील, कूप, सरोवर तथा अन्य नक्षत्रोंके जलको छोड़कर स्वाती के जलका ही प्यासा होता है, उस तृषामें ही उसकी तृष्णा दूधमें मिश्रीकी तरह घुलती रहती है, उसी प्रकार मीराँ अपने ऐहिक पतिसे बिछुड़ कृष्ण-प्रेममें पगी। कृष्णमिलन की उत्कंठा, मिलनाशाकी आशंका और विरहकी अन्तर्वेदना पपीहेके 'पिउ-पिउ' की तरह उसकी काकली है। मछलीके विषयमें किसी कविने कहा है—'मेरे, कटे पचि बनि रहे, पानीहीकी चाह।' जलसे विलग होते ही प्राण त्यागती और जब शक्ति उसे उदरस्थ करना चाहते तो उसे काटकर उसकी 'कुटिया' (खंड) को पानीसे ही धोते; रांधने के समय शुरवेके लिये जल डालते और खानेके उपरान्त अधिक प्यास का अनुभव करते हैं, अर्थात मछलीका जबतक अस्तित्व रहता तबतक पानीकी चाह बनी ही रहती है। मीराँ बिधवा होकर राणासे प्रताड़ित और उत्पीड़ित होकर भी अपने गिरिधारीलालको नहीं भूलती, जबतक उसका नाममात्रको भी अस्तित्व है, तबतक उसके लिये-'मेरो तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।'

पृष्ठ ७२

दरस···नैन = 'रटते-रटते नाम तुम्हारा पड़े जीभतकमें छाले ।' 'नयन अंधाओल पिया पथ देखि'–विद्यापति। भई छमासी रैन = छः महीने की रात । विरहकी अवधि यों ही नहीं बीतती । वहाँ तो पल-पख-वाड़ा' और 'घड़ी महीना' सा बीतता है । इन्तजारी और बेकरारी साथ चलती हैं ।' वहाँ क्षण-क्षण बीत्यौ जात समय अन-मोल खटाखट' पर ध्यान क्योंकर जा सकता है । अङ्ग-उपाङ्ग और इन्द्रियोंका बहुमुखी होना सम्भव है, पर ध्यान एकाग्र या एकोन्मुख रहेगा । जो चित्त और चितवन प्रियतमकी ओर है वह घड़ीकी सुईयोंकी ओर क्योंकर जा सकती है । पाठान्तर–'बह गई करवत ऐन ।' ऐन = घर; घट; हृदय;कलेजा; मेरे कलेजेपर आरी चल गई।

पिड···जात = 'लघुतर सफरी भी भाग्यवाली बड़ी है । अलग सलिलसे जो प्राणको त्यागती है । अहह अवनि मैं ही भाग्यहीना महा हूं; प्रिय सुत बिछुड़े जो आज लों जीविता हूँ ।'–(हरिऔध । पिंड = शरीर । कदाचित मिलनकी आशा (जिस पर मीराँका पूर्ण विश्वास है) के कारण ही शरीरसे प्राण नहीं निकलता । तारा··· जात'तारा = गिन-गिन रैन सिरानी ।' अपघात = आत्महत्या । पट···कुसलात = कदाचित मीराँकी यह सुहागरात है ।

घर आंगन···न भावै = संयोगमें जो वस्तु सुखद जान पड़ती है वही वियोगमें दुखदायी मालूम पड़ती है । प्रायः सभी कवियोंने वियोगकी दशामें इस विपर्ययका चित्रण किया है। विरियाँ = बेला; मुहूर्त; क्षण; घड़ी । होसी = होगी ।

पृष्ठ ७३

तैं = तुम। नेहरा = स्नेह। बराय=बालना; जलाकर।

बंसीवारा=बंशीवाले; मुरली मनोहर। पाठान्तर-'वाली बैस' =भेषवाला उम्रवाला। कौल=प्रतीज्ञा; एकरार। आंगलियारी= अंगुलीको। थारें···सन्देस=मुझे तुम्हारा कबका सँवाद (वचन) है। मिलनेका वचन दिया था। तिन···सफेद=कबीरने भी चित्त के निर्मल होनेपर ऐसाही आश्चर्य प्रकट किया है। भगवाँभेष= गेरुआ वस्त्र पहन लिया; लंगोटी बाँधकर योगिनी हो गई। घूँघरवाला=घुँघराले बाल। मनेम=स्नेह। गिनते···रेख=नखर खिआओल दिवस लिखि लिखि—विद्यापति।

पृष्ठ ७४

म्हां स्यँ=मुझमे। पैंड पैंड=पग-पग पर। जुगन-जुगन= युग-युगसे।

म्हां स्यूँ=मुझसे। तनको=जरा भी। पाना ज्यूं=पानकी तरह। छाने लांघन=खालिशा फाका; सूखी उपवास। बावल= पागल। बाँह=नाड़ी। कसक=दर्द। दाझी—पाठान्तर=दाधी= जली हुई। आंगलियागी···बाँह=ऊँगलीकी अंगूठी बाँहमें आने लगी। खिन्नताका अतिरेक इससे अधिक क्या हो सकता है!

मैं···रह-रह···देय=पपीहेके 'पिउ' शब्दसे विरहिणीको अपने प्रियका स्मरण हो आता है और वह प्राण देनेको व्याकुल हो उठती है। सूरदासकी गोपियाँभी इसी प्रकार प्रकृतिके हास-विलास,

चिड़ियोकी चहक और सयोगिनियोके शृङ्गारमे अपने विरहका चित्र देखती हैं। इतना ही नही उनसे उनके हृदयका घाव और भी हरा हो जाता है। हरे-भरे मधुवनको देख खीझ उठती और उपालम्भ देती हैं।

'मधुवन तुम कस रहत हरे
विरह-वियोग स्याम सुन्दरके ठाड़े क्यो न जरे।'—सूर

काढ़ खाय = विरह वर्णनमे हिन्दीके कवि मीराँसे बहुत ही पिछड़े हैं। उसके निकट तक पहुंचनेवाले यदि हैं तो जायसी और आनन्दघन। मीराँका प्रेम-वर्णन जायसीके प्रेम-वर्णनकी तरह सार्वदेशिक नही जान पड़ता। विरह-वर्णनका क्षेत्रभी परिमित है। उसका विरह भीतर-ही-भीतर घुलनेवाला है; अखिल विश्वको अपने आंसूकी धारसे नहलानेवाला या अपने रङ्गमे रंगनेवाला नही। इसी भावको जायसी किस प्रकार प्रगट करते हैं:—

"पिउसे कहेउ संदेसड़ा हे भौरा हे काग।
सो धनि विरहे जरि मुई ओहिक धुँआ हम्ह लाग॥"

मीराँ कलेजा निकालकर आगे रख देती और कागसे कहती है कि प्रियतमको दिखा-दिखा कर इसे खा जाना। कदाचित इस दुर्गति को देखकर भी उन्हे मेरा स्मरण हो आवे और वे मेरी सुध लेनेको आ जाँय। जायसी कहते हैं–ए कौए, ए भौरे, मेरे निकट, 'कांव-कांव या 'भन-भन' मत कर। यदि मेरी विरहाग्निसे तेरा दिल जलता है तो मेरे प्रियतम से जाकर कह, उससे शिकायत कर कि तुम्हारी प्रियतमा विरहमें जल मरी और उसका धुआं जो मुझे लगा, उससे मैं काला हो गया हूँ। मीराँ अपने विरह की शांतिके लिये संसारकी

सहानुभूति नहीं चाहती । वह संसारको अपने गलेसे गला मिलाकर रोने देना भी नहीं चाहती; इस पक्षमें वह उदासीन है । वह अपने प्रेम-देवसे ही सहानुभूतिकी याचना करती है, क्योंकि उसका तो अपना कोई नहीं है—'म्हारो······मोय ।'

पृष्ठ ७५

वान=आदत, टेव । मीराँ······बिगड़ी=इससे स्पष्ट है कि मीराँके आचरण पर भी लोग दोषारोपण करते थे । प्रेमसमेत बसन मनमोहन नैकहु टरत न टारे । हृदयकमलके मध्य विराजत श्रीव्रजलाल दुलारे ।

❀ ❀ ❀

लोक वेदको कानि तजो मैं न्यौती अपने आन्यो ।
इक गोविन्द चरणके कारण बैर सबनिसों ठान्यो ॥

—परमानन्ददास

कान-कानि=मर्यादा; । प्रतिष्ठा; लाज; आन । पोई=गूँथना असुअन···होई=वेदनामें प्रेमका जीवन है इसीलिये आँसूके जलसे सींचकर प्रेमकी लताको अंकुरित करना स्वभाविक है ।

"मिलन अन्त है मधुर प्रेमका, और विरह जीवन है ।
विरह प्रेमकी जागृति गति है, और सुषुप्ति मिलन है ॥"—त्रिपाठी

जब प्रेममें मनुष्य सराबोर हो जाता, तन-मन और आत्मा उसमें लीन हो जाती तब संसारकी उलहना, भर्त्सना और कोलाहल की चिंता प्रेमी को नहीं रह जाती । माखन···कोई='जगमें सब कुछु सीठ सार इक प्रेम है ।' जब जीवनमें प्रेम नहीं है तो वह

जीवन निस्सार ही है। जैसे मक्खनके बिना दूधको कौन पूछता? आई…मोही=जीव परमात्मासे बिलग हुआ, वह 'विराट' का 'अंश' होकर भी उसकी सत्ता स्वत. प्रकाशित हुई। यद्यपि यह ईश्वरकी इच्छा या लीला थी, तथापि अपने सुखदुःखानुभवके कारण उसे परमात्माका कृतज्ञ होना चाहिये। अथवा भगवद्भक्ति जीवनका स्वाभाविक गुण है; किन्तु सांसारिक मायाजाल, ऐहिक सुखोपभोगकी सामग्रियों तथा अज्ञान-जो उसकी निजी सम्पत्ति है—के कारण उसमें 'तत्वमसि' से परे अहंभाव आ जाता है और कृतघ्न होकर, मायामोहमें फँसकर अपने पाँव आप कुल्हाड़ी मार लेता है। ऐसी अवस्थामें वह त्राण तभी पाता है जब परमात्माकी कृपा होती है। इसीलिये मीराँ कहती है 'तारो अब मोही' सूरदास 'भ्रमरगीत'में गोपी द्वारा यही खीझ ऊधोके निकट प्रकट करते हैं—।'

'अब हमरे जिय बैठो यह पद होनी होउ सो होऊ,
मिटि गयो मान परेखो ऊधो, हृदय हतो सो होऊ।'

मैथिल कोकिल विद्यापतिको विरहिणी भी कुछ ऐसा ही कहती है—

''प्रेमक (आसक) लता लगाओल सजनी, नयनक नीर पटाय।
से फल अब तरुनत भेल सजुनी, आंचर तर न समाय॥'

पृष्ठ ७६—

कहा जाता है कि परमात्माकी प्राप्तिके लिये शील और संतोष का होना आवश्यक है। भक्तको 'समदर्शिन' होना चाहिये अर्थात् न तो सुखका मोह हो और न सुख-क्षयसे ग्लानि। सुख और दुःख

दोनों अवस्थाओंमें एक-सा हाव-भाव रखना भक्तका सहजगुण होना चाहिये। दृष्टिमें इष्टदेव विराजमान हों, गुरुसे इष्टप्राप्तिका मार्ग दीक्षा द्वारा समझे; फिर मनको सावधान कर भगवानकी 'नवधा भक्ति' में लग जाय। मीराँ इस पद में इन्हीं गुणोंको अपनी वेश-भूषामें आरोपित कर रही है।

पाठशुद्धि-पहिरि कुसूँमी सारी=कुसुम या तीसीके फूलके रंगका कपड़ा। प्रायः प्रेमिका उसी वस्त्रको पहनकर प्रियतम से मिलनेको जाती है। प्रेम नदीके तीरा (जमुनाजीके तीरा)। साहचर्य्यका सुख सर्वसुखोपरि है और येनकेनप्रकारेण प्रेमदेवके परमरूपकी शोभा निरखते रहना और उसकी आवभगत में लगा रहना आनन्दकी पराकाष्ठा है। एक ग्रामीण प्रेमिका अपने इस साहचर्य्य सुखका वर्णन करती है—

'आगि लागि घर जरिगा, बर सुख कीन्ह।
पियके हाथ घइलवा, भरि-भरि दीन्ह॥'

चाकर···गासूँ=कवीन्द्र रवीन्द्रने भी अपने 'गार्डनर' नामक ग्रन्थमें इसी भावको स्थान दिया है—

Servant—Make me the gardener of your flower-garden.

Queen—What folly is this ?

Servant—I will give up my other work......... but make me the gardener of your flower-garden.

Queen—What will your duties be ?

Servant—The service of your idle days. I will fresh the grassy path when you walk in the morning. I will swing in a swing among the branches of the 'Sapta parna' when the early evening moon will struggle to kiss your skirt ...

Queen—What you will have for your reward ?

Servant—To be allowed to tinge the soles of your feet and kiss away the speck of dust that chance to linger there.

Queen—Your prayers are granted, my servant, you will be the gardner of my flower-garden.

पृष्ठ ७७···

पैंडो = मार्ग, पथ। जल···मिलाजा—

'विरहानलमें जला राख कर, रख देना उस पथ पर नाथ।
जिस पथसे प्रियतम नित चलते, छू पद जिससे बनूं सनाथ॥'

—कसौटीसे

जोत में जोत मिला जा—

"आओ एक बार आजाओ, पलकोंके अन्दर लूं मूंद।
देखूं तुम्हें, मुझे तुम देखो, मिलूं यथा बूंदों से बूंद॥"

—किसी के प्रति

यह पद मीरांके गुरु रैदासकी ओर इंगित है। अथवा उस

योगीके प्रति निर्देश करता है जिसने मीराँके हृदयमें प्रेमकी चिनगारी सुलगाई थी। रैदास, कबीर और पीपाके प्रायः समकालीन थे। वे रामानन्दके शिष्योंमें एक थे। अतएव, कबीरके गुरुभाई और निर्गुण पंथी साधु थे। अपनी वाणी द्वारा रामनामकी उपासनाका उन्होंने प्रचार किया। उनकी सरसता, भावप्रवणता और प्रेम-माधुरी कबीरकी अपेक्षा अधिक तीव्र और प्रभावोत्पादिनी थी। वे चमार थे और चमारका काम करते हुए हरिगुणगान करते थे। किसी-किसीने उन्हें मूर्तिपूजाका विरोधी बतलाया है। किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि विष्णुकी मूर्ति उनके घरमें थी जिसकी वे सदैव पूजा किया करते थे। ये 'सर्वभूतमयं' हरिः के उपासक, हृदय की कोमलता और प्रेमकी पीरको पहचानने वाले अद्वैतवादी थे। इनकी भावनाका प्रभाव मीराँके पदों पर स्पष्ट है। अपने प्रेमभावका चित्र इन्होंने कितने मधुर शब्दों में व्यक्त किया है—"प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी। जाके अंग-अंग बास समानी" प्रायः यह प्रश्न उठाया जाता है कि मीराँने दलित वर्ण चमारको अपना गुरु क्यों माना ? इस सम्बन्धमें चैतन्यकी निम्नोक्ति पर ध्यान देना चाहिए—

"किंवा न्यासी, किंवा विप्र, किंवा शुद्र हय।
जे कृष्णतत्ववेता सेइ गुरु हव ॥"

हूं···मीत=मीराँने सपनेमें एक योगीका दर्शन किया था। उस योगीने प्रेमका मार्ग दिखाया किन्तु वह स्वप्न क्षणिक था। मीराँकी आँखें खुलीं योगी तबतक अन्तर्धान हो चुका था। कहा जाता है

कि सपनेका वह योगी मनोहर मुरलीधर ही थे । आधे रास्ते पर ही छोड़कर प्रेमके चरम लक्ष्य तक पहुंचाये बिना ही वे मीराँ को छोड़ गये ।

पृष्ठ ७८—

देसड़लो = देश । रूड़ो—खराब । कूड़ो—क्रूर, निच, निकम्मा । छे—है । मीराँको इसका क्षोभ था कि जोधपुरमें वैष्णवमतका प्रचार नहीं हैं । यह एक लिङ्ग का देश है जहाँ कृष्णकी माधुरी की ओर जनताका हृदय द्रवित नहीं होता ।

बदरा—बादल । विज्जु = विद्युत (सं) विजली सवाई = बढ़चढ़ कर । बसन्त और वर्षामें वियोगीनीको शस्य-श्यामल प्रकृति और नवजीवन—विभोर जीव और भी सताते हैं उदीपनका आयोजन मीराँने दिखाया है ।

सरवरियाँरी = सरोवर । साँपड़े = खड़ा । सामी = सामने । विरंग = उदास । डगराँ = रास्ता । कांई = क्यों । थारे = तेरा । पीहर = पितगृह नैहर, मेके । तनैं = तुझे मेरी क्या पड़ी है । हीराराँ पारखी – हीरेको पहचाननेवाला जौहरी । साधरी – साधुकी । बारणे = दरवाजेपर होय···पड़ी = ऐ भामिनी तू इतनी उदास क्यों है ? राहपर यों खड़ी क्यों है ? क्या तेरा पीहर बहुत दूर है ? अथवा तेरी साससे लड़ाई हुई है ? मीराँ उतर देती है ऐ निपट गँवार तू अपनी राह ले, चल जा, तुझे मेरी क्या पड़ी है ? यहाँ पीहर से उस लोक का सम्बन्ध है जहां ब्रह्मका निवास है औरजहाँसे जीव पृथक हुआ है । सास से तात्पर्य प्रकृति या संसारसे है । यह जीव

क्या सांसारिक प्रलोभनों में आनन्द नहीं पाता, जो इससे रूठ गया है, वैराग्य धारण किया है ? मीराँ कहती है कि मेरा मार्ग प्रेम का मार्ग है, वह एकान्त है, स्वतःसिद्ध और सुमधुर है। किसीकी अपेक्षा नहीं करता। तू अपनी राहले, क्योंकि तेरा मार्ग मेरेसे भिन्न है। मेरी अवस्थासे तू परिचित नहीं, न परिचय पानेका तुझे अधिकार है। उसका अधिकार और योग्यता 'हीरारां पारखी म्हारा गुरु दीनदयाल है।' जिन्होंने 'दियो म्हाने ज्ञान बताय।'

पृष्ठ ७६—

तनहद-अनाहत (सं) योगनिद्रा, निविष्ट साधक सुरतिकी अवस्थामें जिस अलौकिक चिरन्तन और चिरानन्दस्रवणी काकली का गुन्जार सुनता है वही अनहद नाद कहलाता है। यह मीरां पर निर्गुण सन्तका प्रभाव है।

मीराँने यत्रतत्रु 'आनन्द', 'सुन्न महल', 'सुरत', 'साहिब', आदि का प्रयोजन किया है वह उत्तर-पश्चिम से आई हुई सूफी—हवा और 'हठयोग' तथा 'नाथ-पंथ' के राजस्थानमें प्रचुर-पचार होनेका परिणाम है रणकार = गुञ्जायमान घरके···बलिहार = मीराँ परमात्माकी अनिर्वचनीय महिमा पर चकित नहो, उसके माधुरी· मिश्रित सौन्दर्यपर आत्मविस्मृता है उसके अज्ञेय स्वरूपका चिन्तन न कर उसके गोचररूप पर निछावर है भक्तिकी परिभाषा करते हुए महामुनि नारदने एक स्थान पर लिखा है—'भक्ति परमप्रेमरूपा यथा व्रज गोपिकानाम्'—नन्ददासने भी कहा है—'प्रेमपुंजको प्रेम जाय गोपिन संग लहिये इससे स्पष्ट है, कि मीराँका प्रेम आदर्श भक्ति

है। उसका प्रेम ही जीवका अमृतत्व-साधन है जिसकी अभिलाषा प्रकट करते हुए ज्ञानरूपा मैत्रेयीने याज्ञवल्क्यसे कहा—'येनाहं नामृता स्यां तेन किं कुर्यामि–अमृतत्वस्य वित्तेन नाशाऽस्ति-'मुझे तो अमृतत्व—परमात्मप्रेम चाहिये जो सांसारिक धनोंसे प्राप्त नहीं हो सकता। मीराँने इसीलिये एक स्थलपर लिखा है—'जगत्त देखि रोई।' प्रायः सभी साधक कवियों और गायकोंमें यह अमृतत्व, ब्रह्म-पिपासा या प्रेमकी पीर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे विद्यमान है। जहाँ निरे-निर्गुण पंथी इंद्रियोंको अंतर्मुख कर या हठयोगके सहारे उसकी गतिविधिको प्रत्यावर्तित कर यम-नियम आदि अष्टांग साधनाके सहारे उस अदृश्यकी आश्चर्यमयी अनुभूतिके चिंतन में रतहो जाते हैं; वहाँ सगुणपंथी साधक कवि और गायक इन्द्रियोंके द्वारको बन्द न कर उनको उसी अदृश्यकी लीलाविधायिनी, मनोमुग्धकारिणी मधुर-मूर्त्तिका रसास्वादन करनेका एकान्त छोड़ देते है। क्योंकि 'रसौ वैसः' यह रस परमात्मप्रेमका ही परिपाक है। इसको पाकर जीव अमृतत्वभोगी बनता है। कवीन्द्र रवीन्द्रने भी कहा है—

"The body should be made the sign and utterence of the soul".

इसीलिये इन्द्रियोंकी ओरसे उपेक्ष्य भाव रखना या उनको दमनकर निष्क्रिय कर देना उनके मनके विरुद्ध है। वह कहते हैं-

No, I will never shut the loor of my sinses ?

मीराँ भी इस पदमें यही कहती है।

चलो···करे=गोचर नहीं, अगोचर जो ब्रह्म है जिसकी रूप-

माधुरी पर हम मुग्ध हैं और जिसे देखकर काल भी भय खाता है, जहाँ प्रेमका मानसरोवर भाव-कमलोंसे सुशोभित है तथा जिसमें राजहंस कलरव कर रहे हैं उस देश को चलो। वहाँ मेरी आत्मा भी अपनी अभीष्ट=सिद्धि-लाभ कर कृतकृत्या हो जायगी। अनन्त प्रेम पाकर, परिमित सांसारिक मोहसे छुटकारा पाकर, मैं अमर पतिसे अमृतत्व-लाभ करूँगी। छिमता=क्षमा। कांकण=कंगना। मूँदरो=अंगूठी, मुँदरी। दुलरी=दो लरका आभूषण विशेष। मेख मे चोंप। अखोटा=अक्षय, अभिनाशी। झूँठनो=आभूषण-विशेष। जौहर=जवाहिर, रत्न। घूँघरो=घूँघट। गजमणि हार=गजमुक्ताकी माला। सोला सिणगार=सोलह श्रृङ्गार।

'अंगसुची, मज्जन, वसन, मांग, महावर, केश;
तिलकभाल, तिल चिबुक अरु, भूषण, मेंहदी वेश।
मीसी, काजर, अरगजा, बीड़ी और सुगन्ध,
पंचकली युत होय तो, तब नवसप्त निबन्ध।

आखड़ी=दुरवस्था का भाव, उदासीनता।

पृष्ठ ८०—

कोई···चीत=यह पद भी स्वप्नमें आये योगीकी ओर निर्देश करके रचा गया-सा जान पड़ता है। वह योगी छद्मवेशमें कुमर कन्हैया ही थे, इसकी पुष्टि पदके प्रथम चरणसे हो जाती है। ऐ रमनेवाले राम, फिर किसी दिन इस दासी पर दया करोगे और दर्शन दोगे। मैं 'बैठ प्रतीक्षासन पर दृढ़ हो, ध्यान कर रही मान उमंग।'

जानत मेरीछाती = मेराहृदय जानता है। ऊँची···रात = उचक-उचक कर राह देखती है। दूरागत पतिके आगमनकी बाट विरहिन प्राय:इसी प्रकार देखा करती है। रोते-रोते आँखें लाल हो गईं।

"कनइत कनइत मोर चख अरुनाएल, नाम लइत जी फोंका।
अवधि गिनइत आंगुर भेल चिक्कन, अजहुं हरू हरि सोका।"
—मैथिल कबि

यो···बाती = 'जग झूठा रे सारा साईयों, मन देख क्यों ललचाया,—कबीर। नाती = नाता, सम्बन्ध।

पल···पाती = 'दिलमें बसती है तसबीर-ए-यार,
जब कभी गर्दन झुकाई देख ली।,—उर्दू कवि
'जाते हो काश यार जानते हो यह नहीं,
तेरी तसवीरसे सजा हुआ हैं घर मेरा।'

पृष्ठ ८१—

यह पद मीराँ और उसकी ननद ऊँदाबाईका संवाद-सा है। भाव भी 'भाभी मीराँ कुलने लगाई गाल' तथा 'थाने बरजी-बरजि हौं हारी' वाले पदोंसे मिलता-जुलता है। मेरो······तोरथो = ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्गमें कोई तात्विक विरोध है नहीं, तथापि मानव हृदय इन दोनोंमें प्राय:एक ही ओर झुकाता है। इनमें जिस पथका पथिक जो कोई बन गया वह अपने जीवनके निर्दिष्ट लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जाता है। ××× विरोधी अंशको छोड़कर दोनों ही को अपने हृदयमें अवकाश देना यह तो परमात्माभिमुख हृदयकी उच्चसे उच्च अवस्था है। परन्तु मनुष्य हृदयमें···एक

का प्राधान्य हो जाना स्वाभाविक है। ·········प्रत्येक मार्गमें मंद और शिथिल रहनेकी अपेक्षा एक ही मार्ग पर आरूढ़ हो जानेसे परमात्माके स्वरूपका अनुभव भली प्रकार हो सकता है। एसे ही एकदेशीय, किन्तु अत्यन्त तीव्र और उत्कृष्ट साधनके अभ्याससे उत्पन्न हुए अनुभवका मीराँ के पदमें सन्निवेश है।'—आचार्य ध्रुव। इसीलिये जो मन हरिसे जुड़ गया वह मन संसार से नहीं जुड़ सकता। मेरी·········गोरध्यो=कवीन्द्र रवीन्द्र 'The Cycle of Spring' में लिखते हैं "You are in the centre of my heart, therefore, when my heart wandcred she never found you."

...When I am parted from you thrown out from our household, I am free to see your face."

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह विश्व परमितके अपरिमित-प्राप्तिके प्रयासकी संघर्षात्मिका द्वन्द्वसमष्टि है—जीव परमात्मा-मिलनके लिये जो जो यत्नविन्यास करता है उसका समन्वय ही यह दृश्य जगत है। जीव और ब्रह्मका यह कार्य प्रयोजनवश नहीं, लीला या कौतुकजन्य है। अतएव, जीवका वियोग, मिलनकी आशा-अभिलाषा तथा प्रयास बच्चोंके भूल-भुलैया या आँख-मिचौनी खेल के समान है। कदाचित लीलानागर मुरलीमनोहर इसीलिये 'नटनागर' कहलाते हैं। नाचन·········'मोरध्यो=सामीप्य और साहचर्य मीराँ की भक्तिका अनुचर है। उसके रहते हुए अपने और अपने प्राण-नाथके बीच पर्दा क्योंकर बनाये रख सकती थी। जब तक

हम अपना अनावृत, अविकृत हृदय, हृदय-धनको समर्पित करनेमें हिचकिचाते हैं तब तक यही मानना होगा कि हमें प्रेमदेवसे अपना आवरण, कुल-मर्यादा, आडंबर अर्थात् मायामय संसार तथा उसके प्रलोभन अधिक प्रिय हैं। जब तक हम निरावृत हो परमात्मा के निकट विनयावनत न हो जाते तबतक हमारी साधना अपूर्ण है। हम यह चाहें कि आवरण भी रहे और अन्तर्देव भी मिलें तो यह हमारी अज्ञान वृत्तिका ही परिचायक होगा। वास्तवमें संसार का हास-परिहास, निन्दा-स्तुति और आकर्षण-विकर्षण हमें परमात्मासे मिलने नहीं देते। हम भूलते हैं कि, हमारी निर्मल और निराडम्बर आत्मा ही परमात्माका अंश है। अंश-अंशीका मिलन विकार लिये नहीं होसकता। अतएव, उस निराकारका साकार रूप हमारे नग्न या माया विरहित रूपको अंगीकृत करना चाहता है। गोपियां इसीसे नग्न प्रेमाकुल होकर निःस्वंबन कर, मान-अपमान की चिन्ता छोड़ लोक मर्यादाको लांघ, रासमें नटनागर गिरधारी के आगे आत्मसमर्पण कर कृत-कृत्य हुई। मीराँ भी वही है।

पृष्ठ ८२—

मायड़ी=मा। साधा=साध। माहिले=अन्तरमें, अपनेआप। धोहड़ी=बेटी। यूं=तू। रैणज=रात। ज्यां···आवे=जिसके इष्टदेवका बास होगा वह रात-दिन उसकी रूप माधुरी का पान करता रहेगा उसकी इन्द्रियां और अनुभूति उसीके आर्श्वपार्श्व विचरती रहेंगी। फिर आँखे एकटक से उसीकी ओर लगी क्यों न रहें?

पलक पड़ नहीं सकती निद्रा क्यों कर आए? बावड़ी=बापो। ज्याँरे=जिसके। मुख निरखत जीजे—

'कभी था देख कर मरता, अभी हूँ देख कर जीता।
अभी जीता अभी मरता, जहरके घूँट छक पीता।'
—नजर।

क्याने=क्यों; किसलिये। मोसुं=मुझसे। पाठशुद्धि-रेसा=ऐसा। कैर=करील, एक काँटेदार झाड़ी जिसमें न तो फल लगता और न पत्ता। धर=घर। थांरो=तेरा। रूस्याँ=रूठनेसे, बिगड़ने से। म्हेर=मेहर, मेहरी-पत्नी, स्त्री। इससे स्पष्ट है कि मीराँ पति-भावसे कृष्ण की आराधना करती थी उसकी अराधना निष्फल न हुई। श्रीकृष्ण ने उसे पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लिया हठकर=बलपूर्वक, निर्भीक होकर, जान-बूझ कर।

बिंन्दो=प्रशंसा करे। मीराँ कृष्णको पतिभावसे पूजती है यह बात वह केवल आप ही नहीं समझती, बल्कि पास-पड़ोसके लोग जानते हैं। प्रसंगवश लोक-मर्यादाका पोषण करनेवाले लोग आक्षेप करते हैं कि मीराँने पतिपरायणताका परिचय न दिया। विधवा होकर भी संसार की रीति-नीति और कुल मर्यादाके अनुसार न चली। यही दोषारोपण उसपर किया गया। किन्तु अटल भगवद्भक्तिके आवेशमें पतिकी उपेक्षा, लौकिक रीती-नितिका उल्लंघन या कुल-मर्यादाका अतिक्रमण अवश्यही क्षन्तव्य है। इस दृष्टीसे विचार करनें पर मीराँका वह कार्य अनुचित न था। राणाने उत्पीड़न दिया, समाजने दोषारोपण किया और भाववश-प्रेमगुरु कृष्णने

हठात् उसको अपनी शरणमें भी नहीं लिया। इतने पर भी वह अपने मनोनीत मार्गसे न डीगी इससे उसका स्तुत्य-पुरुषार्थ था। इसीको भक्तिके क्षेत्रमें अनुकरणीय पुरुषार्थ कहा गया है। मीराँ प्रेम पुरुषार्थकी प्रणेता थी। उसको आत्मविश्वास था और जो कुछ वह करती थी वह उचित, पौरुषेय और अभिधेय समझकर ही करती थी इसीलिए लोक-निन्दा या लोक-स्तुतिकी चिन्ता वह कभी नहीं करती थी। लोगोंकी निन्दासे वह प्रसन्न रहती इसलिये कि वह एकान्त होकर ऐहिक लोगों के संसर्गसे छुटकारा पा ध्रुवधारणाके साथ कृष्णका कीर्तन कर सकती थी। और अपने विरल उपासनामें सिद्धि प्राप्त कर सकती थी। सतगुरु···अंगीठी=

'दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परत गांठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति॥'—बिहारी!

'प्रीति न काहुरि आनि बिचारै'—हित हरिवंश।

मेरो दरद न जाने कोय='सखियन कर दुःख दारुन रे जगके पतिआय।—विद्यापति, 'प्रीति की रीति रंगीलोई जाने।'

पृष्ठ ८३—

रामकी दिवानी······साँवलिया होई=यह छन्द पाठ-भेदके कारण दुहरा गया है।

प्रायः सभी सन्त कवियोंने दानमान की महिमा गाई है। इस पदमें भी उसीका पिष्ठ-पोषण किया गया है। कुण=क्यों, जंजारा=जीव; नरपशु।

मैं······साँची=संसार मुझे कुछ कहे; मुझपर कलंकका पंक

फेंके, कुलटा, कुगामिनी कहे, किन्तु यदि मैं अपने स्वामीके निकट सच्ची हूँ तो मैं साध्वी ही हूँ। वार=बाधा, अड़चन। गुह्=गुप्त। मधुमासी=मधुमक्खी, शहद की मक्खी।

'मोहनलाल के रँगराची।
मेरे ख्याल परो जिन कोऊ, बात दसो दिस माची,
हित हरिवंश डरै काके डर, है नाहिन मति काचीं।"

पृष्ठ ८४—

यहि विधि........धोय=

'जय माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचे वृथा, साँचे राँचे राम।—बिहारी

आपहि आप...ठहरात=मनतैं गई न ऐंठ, जपै मालाका होइ हैं। हरिहितू=भगवद्भक्त। हेत=प्रेम।

"क्या साधन सुविराग प्राप्तिका, कै इसका उत्तर अनुराग।
बन अनुरागी अतः विश्वका, कर मत कभी कर्मका त्याग!"
"काम क्रोध, मद मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य।
इन सब ही सें प्रेम है परे, कहत मुनिवर्य।"—रसखानि।

कहाँ रहे साथी=कृष्ण तुम्हारे साथी कहाँ रह गये। राती=लाल हो जाना। नीरज=कमल। अम्बु=पानी, आँसू। पाना=पान। हरि...वाती=परमात्माके वियोगमें जीव दीपककी टेमकी तरह जलता है। टेम जलती है, पर दूसरोंको प्रकाशका दान देती है। इसी प्रकार परमात्मप्रेमकी वेदनाका अनुभव करनेवाला जीव स्वयम् दुःखानुभवसे अधीर क्यों न हो उठे, किन्तु औरोंको सुमार्ग

दिखा जाता है। जिस प्रकार दीपककी टेमका अस्तित्व और आदर उसके जलनेमें ही है, उसी प्रकार भगवद्भक्तका भी जीवन परमात्म-वियोगकी वेदनाके अनुभव करनेमें है सांकड़ारो = संकटका। 'दुखमें सब सुमरिन करे, सुखमें करे न कोय।' दुःखके समय ही परमात्मा का स्मरण होता है अतएव, बहुधा भक्त दुःखकी कामना करते हैं। किसीने कहा भी है—Poorest the man nearest the Heaven.

"कबिरा हँसना छोड़ कर, रोनेसे करु प्रीत।
बिन रोये हरि ना मिले, प्रेम पियारा मीत ॥—कबीर

पृष्ट ८५—

ताली = ताल; लगन; प्रेम। जगारथ = संसारकी कामना। छीलरिये = छिछोला। डावरिये = गढ़हा। दरियाब = समुद्र। हाल्याँ कोल्याँ = हवाली-मवाली। कामदारा = कारपरदाज। ज्वाज = उत्तर-प्रत्युत्तर। काचकथीर = कच्चाधातु-जैसे लोहा, ताँबा-इत्यादि। सीर = स्नेह। पाठशुद्धि-पापी = पीपा; एक भक्त। परेच्यो = परचा। धणी = पति; स्वामी; मालिक।

रँगधत्ताँ = जबर्दस्तका नशा। रसना = रसका। घुमाव = नशा। दयो = देना। मेड़तणी = मेड़तेकी; मीराँबाई। नौसर = नौलड़ीका। पिया पियाला…उड़जाय = 'रंग उसका है जमा आके मेरे दिल में। और क्यों रँग चढ़े रँग य' जाता न धुये।'—नज़र

"पिया जो प्रेमका प्याला, हुआ बेसुध न है मालूम।
उसीकी सुध अभी तक है, किया बेसुध न है मालूम।"—नज़र

पृष्ठ ८६—

प्रीतड़ी···भूल='प्रीति करि काहू सुख न लह्यो—सूर। प्रेम दुःख का मूल है। लगे हिवड़ेमें शूला—उसके दर्शनके बिना हृदय में टीस उठती है, परन्तु ऐसी ही टीस उधर भी उठे तब तो?

'उल्फ़तका है तब तो मज़ा वे भी हों बेक़रार।

दोनों तरफ़ हो आग बराबर लगी हुई।"

'हृदयक वेदन बान समान, आनक दुःख आन नहिं जान'

—विद्यापति

देखो···काट कियो="सखि मोर पिया, अजहुँ न आएल कुलिसहिया।"—विद्यापति।

निरमोही=निर्मोही। छी=थी। अंवली=उलटी। जाओ हरि निरमोही='हमर एहन पति निरदय सजना, नहिं मन बाढ़य नेह'—विद्यापति। पाय=पिलाकर।

पृष्ठ ८७—

तकसीर=अपराध; भूल; शिकायत। भवजल=भवसागर। कूण···पिहारी=

"कोन गुन पहु परबस भेल सजनी, बुझलि तनिक भल मंद।'

—विद्यापति

'मो बिन जो तुम और रुची, तो रुचै न तुम्हें बिन मोहि॥'

जिये जू'—आनन्दघन।

मैं···चाली=गरीब धनियोंकी अट्टालिका देख आठ-आठ आँसू रोते हैं। इसी प्रकार विरहिणियोंको पतिका प्रवास और भी अधिक

खलता है, क्योंकि उनकी हमजोली-सहेलियाँ अपने पतिके साथ राम-विलासमें रम रही हैं और वह 'तारा गिन-गिन रैन सिरानी'— को चरितार्थ कर रही है दिन तो इधर उधर के मनबहलावमें कट जाता है परन्तु रात काटना बहुत ही कठिन हो जाता है।

"लोचन धाए फेधाएल, हरि नहिं आएल रे।

❀ ❀ ❀

से मोरा विधि विघटाओल, निन्दओ हराएल रे।"

—विद्यापति

पोवे = गूंथना। विरहिन···पोवे = एक ओर उसकी सहेलियाँ मोतिओंकी माला गूंथती हैं,—दूसरी ओर वह आँसुओंकी धारा बहा रही है। प्रकृतिमें भी ऐसी विषम अवस्था देखनेको मिलती है।

देखिये—"सुधाधर बिहँस रहा था चूम—

कुमुद-कन्याके गोल कपोल,

कर रहे थे उस पर आघात

चातकीके विरहाकुल बोल।—"किसीके प्रति।

सुख···आवे = प्रेमकी पीर आनन्द-विधायिनी है। प्रेमी इसमेंसे निकलना नहीं चाहता। उसको इसीलिये विरह प्रिय है। विरहमें आनन्दपर एक धुंधला आवरण पड़ जाता है; आनन्दका लोप नहीं होता। मिलनकी उत्कंठा मंगलाशासे पूर्ण और रमणीक है। इसीलिये विरहकी अनुभूति सार्थक है। किसी ने इस विरहकी अभिलाषा भी की है—

"कब दुखदाई होयगो, मोंकों बिरह अपार।
रोय-रोय उठि दौड़िहों, कहि-कहि कित सुकुमार।"

नागरी दास।

गुटकी=घूँट; बटिका। म्हारे हिबड़े खटकी='उरमें माखन चोर गड़े।'—सूरदास। नटकी=न करना; इनकार करना। दोबड़ी=दो लरकी; दुहरी। बटकी=रास्ता। कारण=लज्जा; प्रतिष्ठा मर्यादा। पटकी=त्यक्त; छोड़ दिया। लुटकी=लोट कर; दण्वत्।

पृष्ठ ८८—

उमावो=उमंग। वाटड़िया=बाट; रास्ता। कल=चैन; विश्राम। तड़। तड़प⋯दानड़ियाँ=

"तलफे बिन बालम मोर जिया।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, तड़प-तड़पके भोर किया।
तन मन मोर रहत अस डोलै; सूनी सेज पर जनम छिया॥
नैन थकित भये पंथ न सूझै, साँई बेदरदी सुध न लिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हरो पीर दुःख जोर किया॥"

नाभि⋯साँसड़िया=हठयोगका प्रभाव है। नाभिकमल तक साँस नहीं पहुँचती। पासड़ियाँ=पासमें, साहचर्यका भाव है। आंटड़ियाँ=बाँकापन; टेढ़ापन। आसड़ियाँ=आशा। लगी⋯आसड़ियाँ=

"लगन लगी हरि सों क्यों छूटै, मों सों समुझि न जाय।
अब करिबो छौ पाँच न चहिये, मन पुरबहु अपनाय॥"

—भगवत् रसिक

म्हाई···मोल=‘माइ म्हे गोविन्द लीनो मोल’ वाले पदसे यह पद मिलता-जुलता है। बजंता ढोल—ढोल बजा कर। आँखी खोल=आँखें खोल कर; खूब जाँच-पड़ताल कर।

पृष्ठ ८६—

खारा—नमकीन, अपेय; अग्राह्य; फीका। थारा=तेरा। मैं··· सारा—जिस प्रकार चन्द्रमामें निजका प्रकाश नहीं होता, वरन् सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित होता है और जिस प्रकार नेत्रोंकी ज्योति ज्योतिप्रदा किरण या ज्योत्स्नासे आती है उसी प्रकार जीवात्माकी सारी शक्ति परमात्मासे मिली हुई है।

मैं···सगुण=‘गौरव सद्‌गुण खान अहाँ छी हम दोषाकर’-‘मैथिली’ से।

इब=अब। गुंज—घुंघची; करजनी। अनड़=अनन्य। धणी=स्वामी। जोबा-पाठान्तर-जोग। दिलगी=दिल्लगी; हँसी; मजाक। मोकूँ=मुझे। घमस=झंकार करता है। म्हें···भारी= मैंने श्यामसे यारी की। लाज···संसारी=“मोहनलालके रंग राची।

मेरे ख्याल परौ जिन कोऊ, बात दसौं दिसि माची।

हित हरिवंश डरौं काके डर, हौं नाहिन मति कांची।’

—हित हरिवंश।

वह सुन्दर रूप विलोकि सखी,

मन हाथ तें मेरे भग्यौ सो भग्यौ।

चित माधुरी मूरति देखत हीं,

हरिचन्द जू जाय पग्यौ सो पग्यौ॥

मोहिं औरन सों कछु काम नहीं,
अब तौ कलङ्क लग्यौ सो लग्यौ।
रँग दूसरो और चढ़ैगो नही,
अलि, साँवरो रंग रँग्यौ सो रँग्यौ॥"
—हरिश्चन्द्र।

पृष्ठ ६०—

जोहर—झील; तालाब! काम···धार=शीलकी महिमा सारे सन्तोंने गाई है। काम क्रोध आदि षड्रिपुओंसे विराग और आचरणकी शुद्धता तथा प्रेमदेवकी सततृचिंतना के प्रति अनुराग भक्तों की एकमात्र साधना है। मीराँ भी 'क्षमा खड्ग लीने रहे, खल को कहाँ बसाय' की तरह शीलका हथियार लिये राणाके सैन्य-बलपर विजय प्रप्त करनेको उतारू है। सफलता का पूर्ण विश्वास उसे है। यह आत्मबलकी पाशविक बलपर बिजय है। जिसने आपपर विजय प्राप्त कर ली, उसपर संसार-क्योंकर विजय प्राप्त कर सकता है? मीराँ बिजयिनी हुई, उसके पद-चिह्नको देखकर दूसरा भी विजय हो सकता है। यह व्यक्ति बिशेषकी दृढ़तापर निर्भर है। काचगिरी-बिल्लौर। दमके=चमकती है; प्रकाशित होती है। परकास (प्रकाश)=चन्द्रमा। अस्तरी=स्त्री।

खारी=खारा, कटु। अटारी=अट्टालिका, महल। मेहर=दया। जनम···क्वारी=मीराँ बिवाहिता होनेपर भी अपनेको क्वाँरी समझती थी क्योंकि उसने गिरधारीलालको पहले ही अपना

पति मानकर स्वीकार कर लिया था। कदाचित उसका विवाह उसकी इच्छाके विरुद्ध ही हुआ था, जैसाकी उसकी जीवनीसे भी प्रमाणित होता है। तारा=उतावलापन; व्याकुलता।

मधुमासमें जब आमकी मञ्जरियोंपर रस-लोलुप्त भौंरे मड़राते हैं तब विरहिणियोंकी सुप्त-व्यथा सजग हो उठती है। उस समय पतिकाप्रवास और भी दुःखदायी हो जाता है। मलयानिलकी मन्द किन्तु मादक झकोर जब प्राणियोंके कोमल हृदय-तन्तुको छूकर निकल जाती है, तब संयोगियोंका उल्लास-विलास तथा वियोगियोंकी वेदना तीव्रतर हो उठती है। उस समय होली किसीके लिये ईद और किसीके लिये मुहर्रम-सी प्रतीत होती है।

पृष्ठ ६१—

सुनी........महाराज=

"आवि रहल मोर नटवर कान
चहुँदिसि लखु सखि प्रकृति सजाएल, लता पुहुप मदमान।
पिउ पिउ कहि कर सोर पपीहा, कोइल कर कल गान।
बाम अंग फरकै रहि रहि मम पहु सँग होएत मिलान॥"
—मैथिल कवि।

अचारवती—पाठान्तर—अचारबती=आचरण वाली; नेम-धरमवाली। कुचालणी=कुचालवाली; ओछी चालवाली। हेत=प्रेम। "Nothing but Love pays the price of love" 'प्रेमका मूल्य प्रेम ही से चुकाया जा सकता है।' शबरीके प्रेम भरे झूठे बेर रामको भी फेरमें डाले बिना न रहे। उसके प्रेमका

मूल्य उनको अपने स्वीकृतिपूर्ण प्रेमसे चुकाना पड़ा वह तर गयी, इस मायामय धराधामको छोड़ राममें रम गयी। इसीलिए नारद ऋषिने कहा—

'भक्ति परम प्रेमरूपा यथा व्रजगोपिकानाम् तथा तदर्पिता खिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।' 'ऐसी…अहीरणी'—का भाव नारद को उपयुक्त भक्ति को परिभाषाके अनुकूल है। सचमुच प्रियको जिसने अपना तन-मन-धन मनसा-वाचा-कर्मणा अर्पित कर दिया है उसका विस्मृतिसे उसको शान्ति तिरोहित हो जाती, व्याकुलता हृदयकी सुखानुभूति घेर लेती है तभी वह भक्त प्रेमजीवी है।

पृष्ट ६२—

ऐंड़ो = ऐंठा हुआ, अड़ा हुआ, टेढ़ा। सौतिया डाह दुनियामें मशहूर है अपने पति को सपत्नीके साथ हास विलास करते देख पत्नीकी इर्ष्या उद्वेलित हो उठती है। बस चले तो सौतको 'काला पानीकी हवा' खिलादे, पीहर भेज दे और उससे भी काम न चले तो मौत के घाट उतार दे। लेकिन यह सब पतिकी सामर्थ्य कूत कर ही किया जा सकता है। यदि पति सर्वशक्तिमान है तो पत्नी को जी मसोसते; दाँतों तले ऊँगली दाबे सपत्नीके हास-विलास, सुख-सम्मान और विनोद-प्रमोद देखनेही पड़ेंगे। यह विवशता पत्नीके लिये और भी दुःखदायिनी है मीराँ इसी विवशताके वशीभूत हो अरण्य रोदन-सी कर रही है। मिलाइये—

"एकहि नगर बसि पहु भेल परबस,
कइसे पुरत मन मोरा ।
पहु संग कामिनी बहुत सुहागिनि,
चन्द्र निकट जइसे तारा ।।"
—विद्यापति ।

अटकी=लीन हो गयी । परमात्माकी सत्ता माननेवाले तत्व-दर्शी उसके आकार-प्रकार और स्वरूपका निरूपण न कर सकनेके कारण अपनी सामर्थ्य-हीनताका अनुभव करते हैं । परमात्मा अज्ञेय है फिर भी इस ज्ञान गोचर विश्वका संचालक है, वह उन्हें और भी कुतूहलमें डालता है । इसी अज्ञेयताजन्य कुतूहल या आश्चर्यमें वे निमग्न हो जाते । स्वयंम् उस आश्चर्यका अनुभव करते, पर दूसरोंको उसी मात्रामें जिस मात्रामें वह स्वयंम् अनुभव करते हैं, नहीं करा सकते इसी लिये गीता में लिखा है—

"आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम् आश्चर्यवद्वदति तथै चान्यः ।
आश्चर्यवच्चेन मन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनंवेद नचैव कश्चित् ॥"

तुलसीदास भी—'केशव कहिन जाय का कहिये,
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिये,—
कहकर अपने परिमित ज्ञानका परिचय दे दिया है । मीराँ भी 'चकित भये हैं दोउ दृग मेरे'—कह कर मौन हो जाती है । रमित··· हटकी=

"इत उत जगमें दिवानी-सी फिरत रहे,
कौन बदनामी जौन सिरपर लई नहीं ।"—हरिश्चन्द्र

पृष्ठ ६३—

मिनखाँ=मनुष्यको। इबके मोसर-अबका अवसर। पिछाणी=पिछली। सगुरा=गुरुवाला, जिसने गुरु किया। निगुरा=जिसने गुरु नहीं किया। नातड़=नहीं तो। औरा सूँ=दूसरेसे। मिरखाँ.. पायो=रेमन मूरख जनम बितायो'—सूर।

"दूलन एहि जग जनमिके, हरदम रटना नाम।
केवल नाम सनेह बिनु, जन्म समूह हराम।
सुरपति, नरपति, नागपति, तिनऊँ तिलक लिलार।
दूलन नाम सनेह बिनु, धृग जीवन संसार॥"

—दूलन दास

'करु मन नन्द-नन्दन कौं ध्यान।
एहि अवसर तोही फिर न मिलैगो मेरी कह्यो अब मान।'

—नारायण स्वामी।

नीदड़, नींद। बिधां=प्रकार, भाँति, तरह। चमक उठी=चौंक पड़ो। चन्द्रकला न सुहात="हौंही बौरी विरह बस, कै बौरो पुर ग्राम। कहा जानिये ये कहत हैं शशिहिं शीतकर नाम।"

—बिहारी।

तलफ तलफ......बात=

"मनमोहन जाकी दृष्टी परत, ताकी गति होत है और-और,
नहिं धरत धीर हिय बिरह पीर, व्याकुल ह्वै भटकत ठौर-ठौर।"

—नारायण स्वामी।

कवियोंकी वेदना प्रायः उधार ली हुई हुआ करती हैं, फिर

भी वे अपनी हृदयकी अनुभूति रस घोलकर उसे अपना बना लेते हैं ! कविकी सफलता इसमें है कि वह उस अनुभूति-रसका फव्वारा इस प्रकार छोड़े कि पाठकोंके हृदय को तरबद्र कर दे। मीराँके हाथमें तुलसीकी सीता, जायसीकी नागमती, सूर-बिहारी आदि की राधा, कालिदासकी पारवती या शकुन्तला, व्यासकी दमयन्ती, हरिऔधकी यशोदा या गोपियाँ न थीं, जिनका सहारा ले वह कल्पनाको उड़ान दिखा सकती। उसकी विरहानुभूति अपनी है, उसकी व्याकुलता प्रतिबिम्ब-जन्य नहीं, स्वतः समुद्भुत है। उसे तो अपने दुःखकी ही पड़ी थी, कल्पनाके सहारे उसपर रंग नहीं चढ़ाया जा सकता था। उसका हृदय अपने प्रियतमके साक्षात्-कारके लिये तड़प रहा है। उसे नतो संसारकी चिन्ता है और न काल्पनिक विरह वर्णनका अवकाश ही। प्रेमोत्सर्गिता मीराँ स्वयंम् अभियुक्ता है और स्वयंम् दर्शिका, निर्णायिका और प्रकाशिका भी। इसिलिये उसके पदोंमें हृत्कम्पन अवश्य है जो अन्यत्र दुर्लभ है। कल्पनाकी केलिका अभाव है जो अन्य कवियों के रचना-कौशलमें सुलभ है। वह गाती थी, इसलिये नहीं कि वह गाना चाहती थी, वरन् विरहानुभूतिसे विह्वल उसका प्रेम-विभोर हृदय गाये बिना नहीं रह सकता था। उसके संगीतमें जो माधुरी है वह न तो हास-विलासकी जननी है, न भागिनी, यहाँ तक की पुत्री भी नहीं। वह माधुरी विरहानुभूति की धात्री परिचारिका या सहचरी है। अधिक ध्यानसे देखा जायतो वह वेदना विलासकी जाया है। 'शेली' ने भी इसका समर्थन—'Our sweetest

songs are those that tell of saddest thought'—कह कर किया है।

जोगियाने=योगीसे। जोगियाने···उपदेश=मीराँ प्रियतम से मिलना चाहती है। इस मिलनके लिये उसे जितना भी त्याग करना पड़े, जो भी कष्ट उठाना पड़े या जितनी भी लोक-निन्दा सहनी पड़े सबके लिये प्रस्तुत है।—मैथिली-कवि लक्ष्मीनाथ गोसाईं की गोपियोंकी तरह—"बैराग-योग कठिन ऊधो हम न करब हो"—उसे कोई हीलाहवाला नहीं है। कंथा=गूदड़ी, भगवा-वेश। खोड़=कंकाल। प्राण···खोड़=मोर मन हरि हरि लए गेल रे, अपनो मन गेल।'—विद्यापति।

मीराँ·······मोय=

कोई दिलवरकी डगर बता दे रे।
लोचन कंज, कुटिल भृकुटी कच, कानन कथा सुना दे रे॥
ललित किशोरी, मेरी वाकी, चितकी सौर मिला दे रे।
जाके रँग रंग्यो सब तन मन, ताकी झलक दिखा दे रे॥"

—ललित किशोर।

पृष्ठ ६४—

ओलूँड़ी=याद; स्मरण। राम······अकुलाये।

"तुअ हम्मर हम तोहर भएलहुँ, रहब कोना तों छारि।
आएब-आएब कहलह बहुतो, खेपैछी इएह धारि।"

- भ्रमर गीतावली।

जिवड़ो=चित्त। चितवत=देखते। आवण·····पावे=

"एखन-एखन करि दिनस गमाओल,
दिवस दिवस करि मासा ।
मास मास करि बरस गमाओल
छोड़लूँ जीवन आसा ॥" विद्यापति ।

तेरो······परूरी = मीराँका जीवन कृष्णमय हो रहा है। वह जहाँ जाती वहीं उसके कन्हैया मिल जाते, किसीकी चर्चा चलती उसे अपने 'चतुर-चर' की ही याद आ जाती। वह अपने 'भक्त-वछल गोपाल' के चरण-रज चूमनेको चाव भरे चखसे द्वार देखती, नहीं, चरण-पार्श्व पा चैतन्यशून्य हो दण्डवत् लोट-पोट हो जाती। विद्यापतिकी राधा इससे कुछ आगे बढ़ जाती है। वह माधवमय नहीं, 'माधव' ही हो जाती है। कारण स्पष्ट है, विद्यापति प्रेमी या कवि ही नहीं वे विविध-शास्त्री-विशारद भी हैं। आत्मा और परमात्माके अभेदमूलक सम्बन्ध या तन्मयतामें ज्ञान और भक्ति दोनोंकी चरम अवस्था है—इस सिद्धान्त पर उनकी आस्था नहीं तो निष्ठा अवश्य है। किन्तु मीराँ शास्त्रसिद्ध नहीं, प्रेमवेदनासिद्ध कवियित्री है। इसीलिये वह सामीप्य चाहती है; तन्मयता नहीं। विद्यापति सामीप्यसे परे तन्मयता तक पहुँच जाते हैं वे कहते हैं—

'अनुखन माधव माधव सुमरइत सुन्दरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहिं विसरल अपने गुन लुबधाई ॥'

यदि बेनीपुरीजीके शब्दोंमें—'इस पदमें प्रेमकी पराकाष्ठा हो गई है; तो मीराँके इस पदमें प्रेमकी पूर्णाहुति।

जोगियारी···बसी=

'जतओ तरनि जल सोखए सजनी,
कमल न तेजए पांक ।
जे जन रतल जाहि सँ सजनी,
कि करत बिहि भए बांक ॥"

—विद्यापति ।

सूरदास 'मन मानेकी बात'—और 'जाको मन जासों सोई ताहि सुहात'—कहकर मीराँ-'कहा करूँ कित जाहुँ मोरि सजनी' प्रश्नका उत्तर देते हैं ।

पृष्ठ ६५—

पतियाँ···बिसराई=मीराँ चैतन्यशून्य हो गई है । विकल भावनाओंने उसके कण्ठको अवरुद्ध कर लिया है; श्वास-प्रश्वासकी क्रिया बन्द है, वह 'आप हिरानी जग न हिरानो' हो रही है । इस अवस्थामें उसके लिये 'दर्दे इश्कको दवा दीदार' है या 'तलफ मर जानी'—ही है और कोई चारा नहीं । यह बात वह वाणी-विन्यासके द्वारा नहीं, 'हिरदो रहो घर्राई' द्वारा प्रकट करती है । इस वेदना-विलासमें वह 'सब ही दुःख बिसराई' सी हो रही है । सुखका अनुष्ठान दुःखकी परमावधिमें है, इस सत्य कथनका प्रतिपादन मीराँने इस पदमें किया है ।

मेरो नाम···दिवानी=आखिर तो मुझे 'तलफ तलफ मर जानी बदा है ही मगर, अगर कभी इस दुनियाँमें पाँव रखो और खुश-किस्मतीसे तुम्हारी किसी दुनिआबीसे भेंट हो जाय और तुम मेरे

बारेमें पूछो तो तुम्हें जाहिर होगा कि मीराँ तुम्हारी विरहमें दिवानी थी। इसी भावको व्यक्त करते हुए उर्दू कवि 'नज़र' ने कहलाया है—

"करना न ग़म, कोई कहे जब, एक था लैली-फ़िदा।
खुश रहो, उल्फ़त में तेरे हो रहा मजनू जुदा॥"

गुझ=गुप्त। जिसके प्रियतम उसके परे हों उसके लिये यह आशङ्का स्वाभाविक है कि उसका प्रियतम उसकी वेदनासे अपरिचित है। ऐसी अवस्थामें अपने प्रेमानुभवकी तीव्रतामें अभी त्रुटि है, इसपर उसका ध्यान नहीं जाता अथवा विरहानुभूतिका कारण अपने प्रियतमकी निष्ठुरता या अन्यमनस्कता समझती है; किन्तु मीराँके प्रियतम उसके परे नहीं, उसके अन्तरतममें हैं; वे निष्ठुर नहीं; उदासीन भी नहीं, वरन् 'प्रेमको रंग रंगीलोई जाने',—'भक्त वछल गोपाल' और 'मेरो अन्तरजामी श्याम' है। इसलिये मीराँ अपने प्रियतम पर दोषारोपण नहीं कर सकती, करती भी नहीं। वह अपनी प्रेमानुभूतिकी पूर्णतामें कमीका अनुभव करती है। इसीलिये कहती है-'श्याम सन्देसो कबहुँ न दीन्हों, जान बूझ गुझ बातीं।' फिर भी वह प्रियतमके दर्शनको व्याकुल है, उसकी प्रेमानुभूतिकी तीव्रता क्रमशः बढ़ती जा रही है। अब उसे यह कहने का अधिकारहो गया है 'मीराँके प्रभु कबरे मिलोगे',आगे वह'नारायण स्वामी'की गोपियोंकी तरह खीझ भी प्रकट करेगी और कहेग—

"बेदरदी, तोहिं दरद न आवै।
कब सौं परी द्वार पर तेरे, विन देखे जियरा घबरावै॥

चितवनमें चित बस करि मेरो, अब काहेको आँख चुरावै।
नारायण, महबूब साँवरो, घायल करि फिर गैल बतावै॥"

नेरा=निकट। निरखण...घनेरो=देखनेकी मेरी बड़ी चाह है। ताप तपन=तापमें तपनेवाले। यों तो विरहाग्निमें जलनेवाले बहुत हैं, किन्तु जलते हुए मधुर मुसकान छिटकानेवाले विरले ही मिलेंगे मीराँ उन विरलोंमें एक है। उसकी आँखें चाह भरी हैं, मुखमाधुरी चखनेको वह उतावली है, बिना मिलनके उसके हृदयको सान्त्वना नहीं मिलेगी; उसका अधीर प्राण मिलनकी आशामें अटका हुआ है। मिलन हो, सुखकी सुखद किरणोंसे छितिजपर लालिमा छिटके और उसकी विरह-रजनी अतीतकी कहानी बने, यही उसका मनोरथ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी विरहणी भी मीराँकी हाँ-में-हाँ मिलाती हुई कहती है—

"पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना,
अँखियां दुनियां नहिं मानती हैं।"

पृष्ठ ६६—

हटकी=वर्जन; डांट-डपट; हांट-डांट। पाठ शुद्धि-मुकर दिखाया घटका=हृदयका दर्पण दिखा दिया; आत्मदर्शन करा दिया मिलाइये—

"कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकनि, कलंकिनि कुनारी हौं।
कैसो नरलोक, परलोक वर लोकनि में,
लीन्हीं मैं अलीक, लोक-लोकनि ते न्यारी हौं॥

तन जाउ, मन जाउ, देब गुरुजन जाउ,
प्रान किन जाउ, टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दाबनवारी बनवारी की मुकुट वारी,
पीतपटवारी वहि मूरति पै वारी हौं ॥”
—देब।

मीराँ ‘रणाजी अब न रहूंगी तोरी हटकी’ कहकर अपनी विवशतापूर्ण खीझ और प्रेमाकुल औद्धत्य प्रकट करती है। यह उसका स्वभाविक चिड़चिड़ापन नहीं है, इसे आकस्मिक घटना ही कह सकते हैं, क्योंकि सहजकोमल प्रेमहृदया मीरांकी प्रवृत्तिके साथ इसकी उपर्युक्त उक्तिका मेल नहीं खाता; उसके मुखसे तो वह खीझ ललितकिशोरीके निम्न शब्दोंमें ही निकलनी चाहिये—

“अब कुल कानि तज्यै ही बनैगी।”

चलां वांही ··· बिरदके नरेश = देश, काल और अवस्थाकी मर्यादा को प्रेमप्राणामीरां पार कर चुकी है। वह राजपाटका मोह छोड़ चुकी, वस्त्राभूषणका लोभ उसका जाता रहा; कुल-कानिसे कबकी कसम खा चुकी भोग विलास एहिक पतिकी परलोक यात्राके पहले ही विदा हो चुका। वह अब केश भी नहीं सम्हालती स्त्री सुलभ-सुकमारता उसमें नामको भी नहीं रह गयी है, रानी का लिवास छोड़ भगवा-भेष उसे भाने लगा है। यदि उसके प्रियतम को पीताम्बर प्रिय है तो उसने अपना शरीर पीला कर लिया है, यदि उसके प्रियतमको मुरलीकी धुनिमें माधुरी बिखरनेकी बान पड़ी है तो उसने मलार-राग अलापना सीख लिया है। यहां तक कि यदि उसके

प्रियतम योगिराज हैं तो वह भी 'भगवां भेष' धारण करनेको राजी है, यदि वह नटवर नागर हैं तो 'कुसुम्मी साड़ी' पहन कर प्रेमाभिनयमें सम्मिलित होनेको उद्यत हो चुकी है। सारांश यह कि जब जहां और जिस भेषमें उसका प्रियतम मिले, तब-तहां और तिस भेषमें वह मिलनेको प्रस्तुत है, इतना ही नहीं उत्कन्ठित और उतावली है।

पाठ शुद्धि-पालद=वरद, बैल। मूठड़ी=मुट्ठी भर बुकन्द=भकोसना, खा जाना। खींच=खिचड़ी। उरोग्यो=ग्रहण किया; स्वीकार किया। होई···प्राबन्द=मांग कर खाया।

दृष्टान्त देकर मीराँ कृष्णसे कहती है कि क्या मैं उपर्युक्त गिने भक्तोंसे भी गई गुजरी हूँ जो हमसे अबतक दूर रहते हो! यदि उनकी तुच्छ वस्तुएँ प्यारी थीं क्योंकि वे भक्ति रसमें पगी थीं तो मैंने भी अपने सौभाग्य और सर्वस्वको प्रेम-रसमें पाग कर तुम्हारे चरणोंमें भेंट चढ़ा दिया है।

पृष्ठ ९७—

म्हारे···पूजा=मेरी मर्यादा, लज्जा, कुल-कानि गुरु और गोविन्द ही हैं। मैं गनगौरकी पूजा नहीं करती। इससे स्पष्ट है कि विवाह और ससुराल आनेके पहले ही मीराँ 'गिरधर रंग रांची' हो चुकी थी। वह अपने ऐहिक पतिको कृत्रिम पति समझती थी। समाजने उसे विवाहिता समझ लिया था इसके विरुद्ध वह कुछ काल तक आवाज न उठा सकी। यह उसकी विवशता थी, चाहे वह विवशता उसकी आत्मदुर्बलता हो या प्रेमयोगकी अपूर्ति। क्रमशः उसका

प्रेमांकुर फूटने लगा तथा विकसित हो चला। अब वह किसीकी 'हटकी' नहीं रहेगी, यहां तक पहुँच चुकी है। इतना ही नहीं अब वह लौकिक आचार-विचार, विधि-विधान और गुरुजनका आदेश-निदेशके विरुद्ध कर्मणा सत्याग्रह करने लग गयी है।

औरज = दूसरे। थे = तुम। गौरज्या = गौरो, गनगौर। पावस्यो = पाओगी। अनदेव = अन्य देवता। थे... भेव = तू मेरा भेद क्या जानने लगी, क्योंकि जो प्रेमकी पीरमें पड़ा ही नहीं वह प्रेमका पथ, तत्व या परिणाम क्योंकर बताने लगा। कों = क्या? वांने = उसको। भगतांड़ी = भक्तकी। मैं... आस = भक्तिमें भक्ति-भाजनकी भक्ति तो भक्तको भाती ही है, किन्तु ऊसके निकटतम भक्त भी इतर भक्तकी पूजा-निष्ठाका अधिकारी है। इसीलिये रामभक्त हनूमानकी भी पूजा उसी आदरभावसे करते हैं जिस आदरभावके साथ 'राम पञ्चायतन' की। निर्गुण पंथी गुरुओं तथा सिद्ध योगियोंकी संगति में रहना पसन्द ही नहीं करते, बल्कि ऐसी संगती पानेवालेकी भूरि-भूरि प्रशंसा और सम्मान करते हैं। मीराँ संतशिरोमणि 'रैदास' की शिष्या थी, इसलिये इस पर गुरु-महिमाका प्रभाव होना ही चाहिए। गुरु या साधु संत तथा पहुँचे हुए भक्तके मार्ग-प्रदर्शन या उनके पद-चिह्नके अनुसरणके द्वारा अभीष्ट-सिद्धि या भगवद्दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। इसी परम्परागत सिद्धान्तके अनुसार मीराँ 'राम मिलनकी आस'—पुरानेके लिये 'सेवा साधु जननकी' करती है।

माइतणो = ननिहाल। मौसाल = मौसा या मौसीका जन्म स्थान।

मेड़तिया=मेड़तेके लोग। थासूँ=तुझे। मारगी=बटमारो। पुन्न=पुण्य। चालना=चलनेवाली हूं।

यह पद मीरॉंबाई और उसकी सास या ससुरालकी सहेलियों के बीच हुई कहासुनी है।

पृष्ठ ९९—

परिचयके दसवेंसे चौदहवें पृष्ठ तक देखिये।

पृष्ठ १००—

साधा···तारी=इससे स्पष्ट है कि मीरॉंका साधुओंकी संगति में रहना राजकुलोचित नहीं समझा जाता था। जहॉं सूरदासके भ्रमर-गीतमें ज्ञान और भक्तिका तुलनात्मक तारतम्य-निरूपण किया गया है; वहॉं मीरॉंके पदोंमें हम सांसारिक ऐश्वर्य और नैसर्गिक साधना का तारतम्य निरूपित पाते हैं। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है कि यह निरूपण ब्रह्मका अंश जीव और प्रकृति या मायाजन्य ऐहिक सुखोपयोग का है।

सन्ता हाथ बिकानी···साधुओंके हाथ बिक गयी। मीरॉं सन्त और गुरुकी आज्ञानुवर्तिनी प्रेम-जीवता है। 'विन गुरु होय न ज्ञान' के अनुसार उसका 'सन्तचरणको शरण रैन'दिन' पर विश्वास करना असाधारण नहीं, भक्ति-संगत और युक्तियुक्त है।

भाव···भरतार=राजकुलोचित शिष्टाचार, वेश-भूषा और सखी-सहेलियोंकी चाटूक्तियॉं छोड़ कर मीरॉंने सदाचरण, सन्तोष का शृङ्गार अपना लिया है; प्रेमकी ओढ़नी ही उसके सधवापनका

चिह्न है। इससे स्पष्ट है कि उसकी लज्जा निवृत्तिके लिये रत्न-जटित पाटम्बरकी आवश्यकता नहीं, शील-सन्तोष-सम्पुट प्रेमकी है।

पृष्ठ १०१—

रमैया···ढुलावे = जेहि अँखियाँ घनश्याम बसतु हैं, तेहि अँखियाँ कर नींद हेरानी'—प्रियतमके बिना हृदय-मन्दिर अंधेरा रहता है और बिरहकी आँचके कारण आँखोंकी प्यास और भी बढ़ती है। उस आँखमें वियोग-वह्निकी ज्वाला है; निगोड़ी नींद वहाँ निठुराई करती; चाह-भरी चितवन नीचे झुक जाती और अरमान 'अश्कके क़तरे' बन ढुलक पड़ते। इसीलिये भगवत् किशोरीने कहा—'नैनन नींद सुजस जो चाहो, नेह लगनकी बात कहौना' और यदि इसका भय है तो 'प्रीतिकी कोई गैल गहौना।'

दादुर···डरावे = मिलाइये—

'सावन सुहावन को भयो आजु आगमन,
कण्टक न भूले हूँ मोहि तरसाइये।
श्यामघन चारों ओर, करि-करि शोर-घोर,
दहला रहे हैं दिल, टुक दया लाइये॥
झिंगुर झकारें; क्रूर दादुर दुकारें मोहि,
झंझा की झकोर तें न और डरपाइये।
मोरनी निगोड़ी नाचे, कोयल खिझावे तापै,
पपिहा पुकारे साथ मेरे प्रान आइये॥'

कहा···मिलावे = विरह की उपमा काली नागिनीके दंशन से दी गई है। नागिनीका विष नागिनी ही बुझा सकती है या कौड़ी

फेंकने वाला गारुड़ी ही। उसकी लहर ऐसी होती है कि देह सुन्न हो जाती है; क्रमशः उसकी अनुभूति तक जाती रहती है; प्रेम-वेदना भी तनकी सुधि भुला देती है। उसका निराकरण तभी हो सकता है, जब प्रेमदेव आकर स्वयं हर लें। एक दूसरी नायिका मीराँके स्वरसे स्वर मिलाती हुई कहती है—

"विरह सांप मोहि डसिगा, लहर न जाय।
के मोर हितू समलिया, देहि बुलाय॥"

पाठ शुद्धि—जड़ी घस लावे। अलूणी—अलावण्य, फीका।

अब···ताला बेली="मोहन मधुपुर बास रे, हमहुँ जाएब तनिक पास रे। कएलन्हि कुवजा सँ नेह रे, तजलनि हमर पिरीत रे। अलिकें कुसुम अनेक रे, कुसुमकें अलि पै एक रे। ओतहि रहथु मन फेरि रे, दरसन देथु एक एक बेरि रे॥" —विद्यापति

तालाबेली=उतावलापन; बेकली। बेली=लता। दुहेली=द्वारपर

पृष्ठ १०२—

झरी=आँसूकी बूंदे बिखेर चली। भोम=भूमि। बार=बाहर। खरी=खड़ी-खड़ी। खरी=खालिस। बादल···घरी=

"मज़ा बरसातका चाहो, तो आ बैठो इन आँखों में।
सुफेदी है, सियाही है, शफ़क़ है अब्रेबाराँ है।"

दावण=दामन; आँचर। सावणियो···रह्योरे=सावनका बादल मड़रा रहा है। द्योनी=दीजीये, दो।

लंगर=लम्पट, छिनाल। कहाँ तो मीराँ पति-केलिको ललाती थी, कहाँ अब इठलाने लगी है। कहती थी 'आजा कन्हैया मोरे

बहियाँ गहोरे।' कहाँ कहती है—'छाड़ो लंगर मोरी बहियाँ गहोना।' कहाँ सद्गुणकी खानसे गुनकी भीख मांगती थी, कहाँ आज लंगर का विशेषण जोड़कर सम्बोधित करती और उपदेश देती है कि 'रीत छोड़ अनरीत करोना।'

पृष्ठ १०३—

दिवश……कीजे हो=

'नींद, भूख, सुख चलिगा, भे दूबर गात।
कोऊ कहे संदेसड़ा, मों पिय घर आत।"

तुम…निहालजी=क्रमशः मीराँ अपने प्रियदेवसे अधिक परिचय पाती जाती है। पहले दर्शनकी अभिलाषा थी; फिर मुरलीकी टेर और 'हँसि-हँसि बतराते' की आकांक्षा जगी। आगे 'सूली ऊपर सेज पियाकी, किस विध मिलना होय' की उधेड़-बुनमें लगी। मिलन हुआ तो लंगर कह कर अपने हृदयधन को कलङ्कित किया; झड़कियाँ भी सुनाईं; 'अनरीत करोना' का 'कमाण्ड' किया। 'बिछुरनको भय रे' इस अशंका से ही कभी उसके हृदयमें टीस उठती थी और जब इसकी प्रतिश्रुति मिल गयी और उसके 'मोहि आरोगो' की अभिलाषा पूरी हुई तो अपने हाथों साग-भाजी ही नहीं; 'छप्पन-भोग छतीसों व्यञ्जन' से थाल भर अपने हाथों परोस आग्रह करती है 'तुम जीमो गिरधर लालजी'। ससुराल आने पर नई बहू से उसकी सास-जेठानी तरह-तरहका खाना पंकवातीं और घरवालोंके सिवा पास पड़ोस 'अपनों' को न्यौत बुलातीं और

सब मिल कर एक राय करतीं कि नई बहू फूहड़ है कि सयानी। मीराँ भी कदाचित् यहाँ अपने सयानेपनकी परखमें उतरी है।

तनकी…वर पायो मैं पूरो=श्रीकृष्णने गीतामें अर्जुनसे कहा है—'मृत्वा वा प्राप्यसे स्वर्ग, जीत्वा वा मोक्ष्यसे महीम्'—यदि वीर-गतिको प्राप्त हुए तो स्वर्ग सुख पाओगे, यदि विजयी हुए तो ऐहिक ऐश्वर्यका उपभोग करोगे। अतएव 'युद्धाय युजस्व' कहकर अर्जुन की अकर्मण्यता और उदासीनता हरली। मीराँ 'Love for love' प्रेम-जीविता होकर प्रेम करती है। यदि प्रेम-पथ पर उनका पर्यव-सान हुआ तो उसे आत्म-तृप्ति मिलेगी और संसारमें अपना 'प्रेम-प्राणा' नाम सार्थक और अनुकरणीय कर जायगी, यदि प्रेम-परीक्षा में पूरी उतरी तो प्रियदेवकी गोदमें मोद मनायगी; साहचर्यका सुख लूटेगी। इस प्रकार 'वर पायों मैं पूरो' का कथन सार्थक है। उसके दोनों हाथ लड्डू हैं। सचमुच घलुए का लाभ इसीको कहते हैं।

पृष्ठ १०४—

नाम…तिरता सुन्या='नाम अजामिलसे खल कोटि, अपार नदी भव बूढ़त काढ़े।'—तुलसी। अधर…घटानीको='जब गज अरध नाम गुहरायो। जब लगि आवे दूसर अच्छर, तब लगि आपुहि धायो।—दूलनदास। सुकिरत=सुकृति; सुकाज; पुण्य। कुमाणी=कुमान्य, खोटा। जूण=योनि। ऊधरे=उद्धार पाया। परतीत=विश्वास। रावली=आपकी। पत्नी पतिके परम प्रेमके रसस्वादनकी अधिकारिणी है, इसलिये यह पतिकी अर्द्धाङ्गिनी, सहचरी या साधर्म्य भागिनी है। वह अनुचरी भी है; यदि पति की

शयन-शय्या पर संगिनी बनती तो साथ ही उनके चरण भी चाँपती। उसे जितना ही अधर-चुम्बनका अधिकार है, उतनाही चरणामृत का भी। इसीलिये मीराँ अपनेको प्रियतमकी सहधर्मिणी ही नहीं समझती, वरन् 'दासी रावली अपनी कर जाणी हो' की अनुनय-विनय भी करती है।

मेरे तो रामनाम···होई=पाठभेदके कारण यह पद दुहराया हुआ-सा मालूम पड़ता है। राणो···पोय मगन होई=मीराँके इस कथनका समर्थन दूलनदासकी निम्नपंक्तिसे भी होता है—

"मीराँको विष अमृत किन्हों, विमल सुजस जग छायो।"

पृष्ठ १०५—

कुलनसी=कुलकानाश करनेवाली; कुलाङ्गरिणी। जमफँसी=यमका फन्दा। तेरे कारण···रसी=

"इत उत जगमें दिवानी-सी फिरति रही,
कौन बदनामी जौन सिर पै लई नहीं।

❀ ❀ ❀

होनी अनहोनी कीनी सबही तुम्हारे हेतु,
तऊ प्राण प्यारे भेंट तुमसौं भई नहीं॥"

—हरिश्चन्द्र।

हटकी=बरजना। घुरी=भवँर।

पाठशुद्धि-ऊभी ऊभी=खड़ी-खड़ी। मणिधर=मणिधारण करने वाले। माथरी=चद्दर। पछेड़ी=पिछवई। दहीड़ी=दहीकी बनी वस्तु; दही-बड़ा। एलची=इलायची। काथा=कत्था। चुनारी=चूना

रभना=खेलना। रामने···आंखड़ी = रमैया तुझे देखकर मेरी आंखें ठंढ़ी हुईं। 'नेह निभाये ही बने, सोचै बनै न आन,-कबीर।

पृष्ठ १०६—

पाठशुद्धि-परा = पग। व्याल=सर्प। जाची = माँगना।

दाय = पसन्द। यह पद मीराँके उस समयका चित्र है जिस समय वह ससुरालमें थी और अपनी साधनामें पूरी नहीं उतरी थी। पूर्व···याद =

"इश्क चमन महबूबका, जहाँ न जावे कोई।
जावे सो जीवे नहीं, जिए सो बौरा होई ॥"—नागरीदास।

पृष्ठ १०७—

परण—प्रण = विवाह। विश्वाबीस = सचमुच; वास्तविक। आल-जंजाल = व्यर्थ। सुधे=अमृतसे। जान = बारात।

पाठशुद्धि-गनगोर = गौरी पूजनका त्यौहार।

लैगो = ले गया। मींचत = मलती हुई। तई = तप्त हुई। बिहारी की राधा 'लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं-'कहकर प्रेम-नदीमें तैरने लगती है किन्तु मीराँकी लाज बड़ी ही जबर्दस्त जान पड़ती है। वह लाजके कारण सामलियाके साथ नहीं जा सकती; यह उसकी बेबसी है, जिससे इसकी बेकली और भी बढ़ जाती है।

"दिलमें पैदा हो जलन, आँखोंसे आँसू हो रवाँ।
पानी बरसाए कोई, आग लगाए कोई ।।"

'सखीरी लाज बैरन भई।

वह नटवर घन साँवरो मेरो मन लैगयो री।
बैरिन लाज ह्वै गई मेरी बिरह दै गयो री ॥"—हरिश्चन्द्र।

पृष्ठ १०८—

संसार अनित्य है। प्रकृति भी एक दिन पुरुषमें लय पा जाती है। मीराँ सांख्यके इस सिद्धान्तको पूर्णतः समझती थी, इसीलिये उसने लिखा, चन्द्र, सूर्य, पृथिवी, आकाश, जल, और वायु सबके सब चले जायँगे, रह जायगी एकमात्र ब्रह्मकी सत्ता। इसीलिये वह किसी दूसरेसे प्रेम न कर उसी अविनाशीको अपना प्रियतम समझती तथा उसे ही अपनी हृदयाञ्जलि देती है।

जिनके⋯जाती = 'प्रीतमको पतियाँ लिखूँ, जो कहूँ होय विदेश। तनमें, मनमें ताको कहाँ संदेस।—कबीर।

हेमनी = सोनेका। काँचे⋯तेमनी = प्रेमके कच्चे धागेसे जिधर चाहते उधर खींच लेते हैं—कच्चे धागेमें बाँधकर मनमानी करते हैं। प्रेमके इस असंगत फाँसमें जो फँस जाता है वह कोशिश करने पर भी नहीं निकल सकता। उस फाँसमें फँसनेवाला रह-रह कर कराह उठता है किन्तु उसी आहमें उसका जीवन है। इसीलिये प्रेमकी परिभाषा किसी अँग्रेजी कविने ठीक ही कही है—Love is a pleasant woe—"प्रेम आनन्द-प्रसविनी पीड़ा है, जहाँ किसी और की अकांक्षा रहती है वहाँ आकुलता भलेही हो, दुःख नहीं है। यही प्रेमजन्य आकर्षणमूलक वेदना प्रेम-फांसमें फँसे प्रेमियोंका एकमात्र आधार है। आकांक्षाकी आसक्ति ही एकोन्मुखी वृति धारण कर प्रेमकी संज्ञा धारण करती है। आकांक्षाजन्य आकुलता

ही प्रेमकी काकली है। इस काकलीका रस जिसने चख लिया वह क्षणभर भी इसके बिना नहीं रह सकता। इसी हेतु वेदना भी वह मधुर-मदिरा है जिसका स्वाद और पिनक वही जानता है जो चख कर छोड़ नहीं देता, वरन् निरन्तर चखते अघाता नहीं। आनन्द घन भी कुछ ऐसा ही कहते हैं—"

"जिन आँखिनरूप चिन्हारि भई,
तिनकों नितही दहि जागनि है।
हितपीर सों पूरित जो हियरो,
फिरि ताहि कहाँ कछु लागनि है॥"

"प्रेम-प्रेम सब कोउ कहे, कठिन प्रेमकी फाँस।
प्रान तरफि निकरे नहीं, केवल चले उसांस॥"—रसखान।

पृष्ठ १०६—

जब···पानी=स्मरणमात्रसे आँसू छलक पड़ता है—

"हाय रो लेनेसे भी कब दर्द दिलका कम हुआ।
जब किसी की याद आई, फिर वही आलम हुआ।"

शाश्वतप्रेमकी अनुभूति वियोगदशामें और भी जागरित तथा तीव्र हो उठती है। विरहकी झीनी चदरियासे छनछन कर आनन्द की ज्योत्स्ना हृदयचकोरको सुधारसपान कराती है। भावी महा-मिलनकी उत्सुकता तथा विरह-वेदना हमजोली सहेलियोंकी तरह एक ही सेजपर सोती हैं; एक ओर स्पर्श की गुदगुदी है, दूसरी ओर शीतल समीरका कम्पन। निराशा और आशाकी—'सोना डुब्बी' प्रेमवारि से लबालब हृदयमें हिलोर उत्पन्न करती है, जिसकी

कलकल ध्वनि प्रेमीके कर्णकुहरोंमें माधुरी छिड़क जाती है। जिसने इस विष और अमृतके मिश्रणसे प्रस्तुत मोदकका सेवन किया वह प्रेमदेवकी दृष्टिमें ही नहीं, प्रेमलोलुपोंकी लालसामें भी स्थान पा गया, वही स्वस्थ्य प्रेमी हैं। उसीके प्रेमकी प्रशंसा चैतन्य जैसे प्रेम-प्रवर्तकने की है—

"एई प्रेमार आस्वादन, तप्त इक्षु-चर्वण;
मुख ज्वले, ना पाय त्यजन।"—

गरम-गरम ऊख चूसना! मुँह जलता है, किन्तु मिठासके कारण जी छोड़नाभी नहीं चाहता। वेदना होती है, किन्तु प्रेमका आकर्षण इतना मोहक है कि वेदनाका भय भीत नहीं कर पाता। सुख-दुःख की यह अठखेलियाँ प्रेममार्गका पथिक ही जानता है।

पदके प्रथमचरणको हटाकर पढ़नेसे कवित्तका लय आता है।

पृष्ठ ११०—

जनम जनम···जागा=सचमुच सत्संगतिकी महिमा अपार है; 'जैसी संगत वैसी पंगत।' जैसोंका साथ होगा वैसाही आचार-विचार होगा; और जैसा आचार-विचार होगा वैसाही तुम कहला-ओगे। मीराँको इसीलिये अपनी सोई भक्तिको जगानेके लिये सद्गुरुकी आवश्यकता हुई। कहा भी है—

"रे मन रसिकन संग बिनु, रंच न उपजै प्रेम।
या रसको साधन यहै, और करहु जिन नेम।"—ध्रुवदास।

बनज=कमल। नैनन···बसाऊँ=कबीर भी ऐसी ही डींग हाँकते हैं—

"नयननकी करि कोठरी उतरी पलँग बिछाइ।
पलकनकी चिक डारिकै, पियको लेहुँ रिझाइ॥"

किसी उर्दू कविने भी ऐसा ही आग्रह किया है—

'ए इश्क के मुसाफिर हम पै भी दया करना।

❀ ❀ ❀

पलकोंमें समा जाना आँखोंमें रहा करना।"

एकटक प्रियतमकी बाट देखनेकी कैसी सुन्दर व्यञ्जना है! त्रिकुटी···बिछाऊँ=मानव शरीर एक अद्भुत महल है; उसके झरोखे भी वैसे ही विचित्र हैं। बाह्य संसारकी अभिव्यक्तिरूपी प्रकाश नेत्ररूपी झरोखेसे किस प्रकार छनछन कर आता है। भीतरमें रहनेवाला 'मनुआँ' उन्हीं झरोखोंसे चारोंओर झाँकता और उसकी झकोरमें पड़कर अपने आपको भूल जाता है। सुखकी सेज बिछाकर सैयाँके साथ पौढ़नेकी चाह कितनी स्वाभाविक है यह कोई गृहस्थिनी ही बता सकती है!

तुम···घाया=सूर्यकी किरणोंसे, चन्द्रकी चाँदनीसे, समुद्रकी तरङ्गसे तथा अग्निकी धधकसे जो अनुरक्ति-विरक्ति है, परमात्मा की जीवसे भी वही है। अंगी अंगका भाव नहीं छोड़ सकता उसी प्रकार ब्रह्म जीवके अभाव और पूर्तिकी ओर ध्यान रखता है तथा जिस प्रकार अङ्ग अङ्गीके परे नहीं है उसी प्रकार जीव ब्रह्मके परे नहीं। दोनों—जीव और ब्रह्मके बीच अङ्ग-अंगीकी तरह सापेक्ष्य-भाव है। किरणोंके कारण सूर्यकी सत्ता जानी जाती है उसी प्रकार जीवकी सत्ताही ईश्वरकी सत्ताका प्रमाण है। मेज़िनीने इसीलिये लिखा है कि—'God exists because we exist.'

इसीसे आगे बढ़ कर कर्मयोगी कहते हैं कि, परमात्मा अपनी सृष्टिमें ही प्रकाशित है। मनुष्य आदि चराचर जीव उस अंशीके अंश हैं; उससे न तो पृथक हैं न उनकी सत्ता स्वतःसिद्ध है। उनकी इच्छा ब्रह्मकी इच्छाका कार्य है, कारण या उपकरण नहीं। मीराँ इसी अनन्त सत्यके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर रही है, किन्तु इस अनन्त सत्वको अपने मनोऽनुकूल रूप-रंग और संज्ञा से विभूषित करके।

रावरो = आपका। बिड़द = यश। रूड़ो = अच्छा, भला। पीड़ित पराये प्राण = दूसरों (भक्तों) के दुःखसे दुःखी होनेवाले। सगो = सम्बन्धी। आन = दूसरा। ईश्वर भक्तोंके दुःखसे दुखी होता है; निराधारका आधार है, आर्त्तोंकी पुकार सुनता है, और अशरण-शरण है। मीराँ इसीलिये अपनेको उत्पीड़िता, सर्वस्वहीना, लोकलाञ्छिता और परिचितत्यक्ता कहती हुई कृष्णको अभिज्ञ करती है कि वह उनकी दासी है तथा सहायताको पुकार रही है

पृष्ठ १११—

मिलनकी लग रही डोरी = मिलनेकी व्याकुलता बढ़ रही है। इसलिये वस्त्राभूषणकी चिन्ता नहीं, खान-पानकी परवाह नहीं और होलीमें आनन्द नहीं। वियोगकी अवस्थामें ऐसा होना स्वाभाविक है। अलबेली अलिने लिखा है :—

"रूप-सुधा भोजन जिनको री।
ते क्यों और नैन भरि देखें, दरस अहार परो तिनको री ॥"

रंग भरी……परी री—जहाँ मीराँकी सखी-सहेलियाँ

अबीर-गुलाल, चोआ, चन्दन आदि सामग्रियाँ एकत्र कर रही हैं, वहाँ वह प्रियतमके चरणोंमें निछावर है। ऐहिक सुख-सम्पदा उसकी चली गई, फिर होली खेलनेको भी उसे हार्दिक गुणोंका ही सहारा लेना पड़ेगा।

सावन······थोरा=मिलाइये—

"घेरि घेरि घन आय छाय रहे चहुँ ओर,
कौन हेत प्राणनाथ सुरति बिसारी है।
ऐसे समय हरिचंद नेक न धरत धीर,
विरह विथा तें होत व्याकुल पियारी है॥"
—हरिश्चन्द्र।

पृष्ट—११२

मनवा=मन। भनक=आहट। दामिनी=बिजली। भला जब पियारे दूर थे तो सावनकी रिमझिम बूँदे तीखे तीर-सी लगती थीं, शीतल-वन दिलको सहलानेके बदले दहलाया करता था; घनकी घटा सुखको घेर लेती थी; कोयलका कल-कूजन कसकको और भी उकसाता था, बिजली चमक-चमक कर चित्तको बेचैन किये देती थी, किन्तु जब प्रियतम पास हैं तब वही दुःखदायिनी प्रकृति सुखके साज सजती हुई-सी जान पड़ती है। किसी विरहिणीने मीराँकी तरह प्रियतमके आनेकी आहट सुननेके पहले ही सिर्फ सँवाद पा प्रकृति को चुनौती देती है—

"दादुर-दुकार की न करूँगी शुमार कुछ,
पपिहा के पिउ शब्द सुने भी न जाएँगे।

बिजली प्रबल-ज्वाल, जुगनूकी चिनगारी,
बादल-भयद-रव कैसे डरपाएँगे।
मोरनी निगोड़ी नाचे, गावे पिक ताल दे दे,
सखीके सिंगार चित्त कैसे दहलाएँगे।
रजनी अँधेरी तू भी अरमान पूरा कर,
काम आ सताले, आज प्रान मेरे आएँगे।

मेहा···घरे रे=आजु कछु कुंजनमें बरसा-सी।
बादल दलमें देख सखीरी चमकति है चपला-सी।
नान्ही-नान्ही बूंदनि कछु धुरवा-से पवन बहै सुखरासी।
मंद-मंद गरजनसी सुनियतु नाचति मोर सभा-सी॥
—व्यासजी

सावनकी रात विरहिणियोंके लिये अमंगलमूलक है। सूरदासने 'पिआ बिन साँपिन रात' कहकर इसे स्वभावसिद्ध क्रूर और दुखदाई बतला दिया है। इसीलिये सुहावना सावन किसी समय उसके हृदयमें जलन पैदा करता था और कहती थी—'मैं बादल देख झरी हो श्याम मैं बादल देख झरी' और आज जब उसने 'लियो पुरवलो बररे' और 'बहुत दिना पर प्रीतम पाए' तब वह सावनके मेघ से विनती करती है कि तू बरस, धीरे-धीरे बरस, नन्हीं-नन्हीं बूंदें रिमझिम बरसें क्योंकि मीराँका आज 'नेह जुड़ाया' है।

चितारो=चुकाया। दाध्या=जले। लूणा=नमक। हिवड़े करवत सारो=छातीपर आरी चला दी। नागमतीका रोना सुन चिड़ियों की नींद हराम हो गई, चिड़ियाँ चहक उठती हैं, जिससे नागमतीकी

सोई चाह जाग उठती है। वह चिहुक-चिहुक कर और भी रोने लगती, उसके नींद नहीं आती। इसका कारण वह जानती है कि वह विरहकी सताई है। चिड़ियाँ चैन नहीं पातीं, उन्हें नींद नहीं आती और रह-रह कर चहक पड़ती हैं, इसका भी कारण 'लगन-लगनकी बात ही' है, ऐसा विरहिणी नागमतीका अनुमान है। दुखिया एक दूसरेका दर्द पूछकर अपने आँसू पोछते हैं। नागमती भी इसी प्रकार चिड़ियोंसे उनकी बेचैनीका हाल पूछती, जिससे उसकी जलन पर मरहम लग जाय—

"तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी,
केहि दुःख रैनिन लावसि आँखि।"—जायसी

सूरदासका विरह वर्णन जायसीकी तरह गम्भोर नहीं और न मीराँकी तरह अपना ही अपना है; किन्तु व्यापक कम नहीं है। वे कहते हैं—

"हौं तो मोहनके विरह भरी रे, तू कत जारत।
रे पापी तू पंखि पपीहा, पिउ पिउ पिउ अधि रात पुकारत।"
—सूरदास

तज ··· ध्याये = मिलाइये—'पाँय पियादे भै करुणामय, गरुरासन बिसरायो।'—दूलनदास

पृष्ठ—११३

कमल दल लोचना ··· भुजङ्ग—तुम श्यामलकिशोर हो, सुकुमार हो, सहज सुन्दर हो, शान्ति तुम्हारो सहचरी है, दयाको तुम कभी भूलते नहीं, फिर भयंकर काली भुजङ्गनीको तुमने कैसे वशमें कर

लिया। सचमुच तुम्हारी लीला अपरम्पार है। तुम कमलसे भी बढ़कर कोमल हो, तो कुलिशसे भी अधिक कठोर हो। आखिर होतो सच्चिदानन्द ही न ? शील, शक्ति और सौन्दर्य तीनोंका चरम समन्वय तुम्हीं में है।

पण=प्रेम लगन, बाजी। टांक=माशा। बतलाय=पूछा। रिसाय=क्रुद्ध। कोप्यो=क्रुद्ध हुए। सेल=भाला, बर्छी। पिराछत=प्रायश्चित्त। मेल=भेज देना। रती=तनिक। मोद=हर्ष। सिसोद=सिसोदियावंशीय, उदयपुरके राणा। देवड़ी=इष्टदेवकी, भगवान्‌की। बरत=व्रत। इबके=अबकी। भोरो=भोलाभाला। सांड्यो=सांढ़नी ऊँट। मोकल्यो=भेजा। अस्तरी=स्त्री। मुरड़=रूठकर। नीसरी निकल गयी। सूरापन=वीरोंकी तरह प्रण करके। ख्वार=खोटी खराब

विषरा...और=इसका समर्थन गोस्वामी ध्रुवदासने भी किया है—

"लाज छाड़ि गिरधर भजी, करी न कछु कुलकानी।
सोई मीराँ जग विदित, प्रकट भक्तिकी खानि॥"
"वंधुनि विष ताको दियो, करि विचार चित आन।
सो विष फिर अमरित भयो, तब लागे पछतान॥"

—ध्रुवदास।

पृष्ठ ११४—

साधू जननो=साधुओंका। साकर या साकट=हिंसक, भक्ति विरोधी; असाधु।

साकर जननो……मंगरे=

"तजो रे मन हरिविमुखनको संग।
जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजनमें भंग।"

—सूरदास।

"हरिजन हरिहि और न जाने, तजै आन तन त्यागी
कह रैदास सोई जन निर्मल निस दिन जो अनुरागी॥"

—रैदास।

"साध संग छिन एक को पुन्नन बरण्यो जाय।
रति उपजे हरि नाम सू सब ही ताप बिजाय॥"

—दयाबाई।

थासे=हो जायगा। संतोनी=सन्तोंकी। रज=धूलि।

पृष्ट—११५

लोकड़ियाँ=लोग। पाँवलियाँ=पांव। थाय=हो। त्यां=तहाँ। दौड़ीने=दौड़ कर। मुकीने=छोड़कर। बेसी=बैठी। चारोजाम=चारो पहर।

'जिनको हरिनामसो नेह लगो; तिनको अब देहकी काहेकी आसा,

—बुल्ला साहिब

कुसुमल=कुसुम रंगका। लेंगो=लहँगा। ऊभी=खड़ी। मोर मुकुट…बलिहारी=

'मोर मुकुट कटि काछनी; कर मुरली उरमाल।
एहि बानिक मों मन बसे; सदा बिहारीलाल॥'—बिहारी

पृष्ट ११६—

वारवाणी = खालिश कुन्दन, शुद्धलाल। गरक = घुसना। सनकाणी = चुभना। वर्त्तमान भौतिकवादके इस युगमें 'लोकलाजकुलकानी जगतकी दई बहाय जसपानी'—उक्ति सुनकर कुछ सभ्य अप्रसन्न होंगे। उनकी दृष्टिमें 'भूतभक्ति भूतेशभक्ति है' अतः जगतमें रहकर भी भगवद्भजन और आत्मचिन्तन हो सकता है। प्रवृत्तिमें ही सच्ची निवृत्ति है। यद्यपि इस तर्कमें भी बहुत कुछ तथ्य है, तथापि विना संसार-त्यागके एकान्त परमात्मचिंतन असम्भव नहीं तो दुःसम्भव अवश्य है। अतएव, आदर्श प्रेमप्राणा मीराँका त्यागमय जीवन अनन्य भक्तिका अभिनन्दनीय आदर्श है। मीराँका वैराग्यसाधारण मनुष्यका बैराग्य नहीं, जो संसारको कुटिल दृष्टिसे देखता और रोष प्रकट करता है; वरन् मीराँका वैराग्य अखिलेश्वरके प्रति उन्मुख अनुपम प्रेमसेही समुद्भूत है। उसके वैराग्य में, प्रेम माधुरीमें मनोमुग्धकर मृदुता थी; उसके करुणार्द्र हृदयमें सिकता-कणमें विलीन होनेवाली वेदनाम्बुधिकी लहरें नहीं उठतीं, प्रत्युत् कल-कल-निनादिनी पुण्यतोया मन्दाकिनी गङ्गोत्तरीसे झरझर कर हरिद्वार तक पहुँचे मुमुर्षुओं के कल्मष धो बहाती है। इसका विरहगीत न तो अरण्यरोदन है, न स्वार्थसिद्धिका उपकरण, वह परमार्थसिद्धिका अनुष्ठान भी है।

थाने······हरिगुण गायो = जिस हरिने तुम्हें और हमें यह शरीर दिया है उसीका मैंने गुणगान किया है। अठी उठी = इधर उधर। जद = जब। विड़द = यश (विरुद)।

"हम भक्तन के भक्त हमारे ।

❀ ❀ ❀

जँह जँह भीर परे भक्तन पै, तँह तँह जाइ छुड़ाऊँ ।

❀ ❀ ❀

जीते जीति भक्त अपने की, हारे हारि विचारौं ॥"—सूर

पृष्ठ ११७—

सारो=बस; सामर्थ्य । पतियारो=विश्वास । कारो=काला नाग; सर्प । मोर चन्दो=मोर का पंख । सचमुच प्रेम-पीरकी दवा प्रियतम की प्रेमभरी-चितवन है । इसका समर्थन दयाबाई भी करती हैं:—

"हंसि गावत, रोवत, उठत, गिरि गिरि परत अधीर ।
पै हरि रस चसको 'दया' सहै कठिन तन पीर ।
प्रेम पीर अति ही विकट, कल न परत दिन रैन ।
सुन्दर स्याम सरूप बिन, 'दया' लहत नहिं चैन ॥"

—दयाबाई

इस पदमें मीराँने कृष्णके उस रूपका चित्रण किया है जो रूप उसके हृदयमें घर किये बैठा है । वर्णनमें स्वाभाविकता है । उपमा, रूपक आदि जो अलंकार दिखाई पड़ते हैं वे रीति-परम्पराका पोषण करनेवाले कवियोंके ढंगके नहीं हैं ।

प्रिया·········जाज्यो=

"आँखों में आके बैठो, पलकोंमें मूंद लूं मैं ।
मैं देखती तुम्हें रहूँ, तुम देखते मुझे रहो ।"

पृष्ट ११८—

कुदरत=प्रकृति; माया; शक्ति। कुरबान=करामात। वाले=बचपन। रथवान=सारथी। बन्दी=कीतदासी। ना कोई ……ज्ञान=मिलाइये:—

"य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥"

यातन………रातो=

"यहि तनका दिवला करों, बाती मेलों जीव।
लोहू संचो तेल ज्यों तब मुख देखो पीव॥"

—कबीर

सेजड़िया………अजहुँ न आया हो=

"प्रान पिया मेरे गृह आयो, रचि पचि सेज सँवार।
गावहुरी मिलि आनन्द मंगल 'यारी' मिलके यार॥"

—यारी साहब

पृष्ठ ११६—

अटक परी=ओट पड़ गई; छिप गई। चोरी……कोय=न चोरी करती; न किसी जीवको सताती तो फिर मेरा कोई क्या कर लेगा। खर=गधा। धणनामी=प्रसिद्ध; नामबर। कंथ=कंत; स्वामी। धनि=पति। थे थारे म्हारे=तुम अपने लिये और

मैं अपने लिये ? तुम अपनी राह देखो और मैं अपनी देखती हूँ। ऐसी ही हठी हरिश्चन्द्र की नायिका भी है :—

"वह सुन्दर रूप विलोकि सखी,
मन हाथ तें मेरे भग्यौ सो भग्यौ।
चित माधुरी मूरति देखत हीं,
हरिचंद जू जाय पग्यौ सो पग्यौ॥
मोंहि औरन सों कछु काम नहीं,
अब तौ जो कलंक लग्यौ सो लग्यौ।
रंग दूसरो और चढ़ैगो नहीं,
अलि, साँवरो रंग रँग्यौ सो रँग्यौ॥'

—हरिश्चन्द्र।

कोई·········मदमाती = भला दूसरेके दुःखको कौन समझ सकता है ? कबीरने लिखा है—

"जाके लागी सो लखै, की जिन लाई सोय।"

मीरांकी नाईं इस दशा को प्राप्त एक दूसरी नायिका भी यही बेबसी प्रकट करती है:—

'नयनक बान बेधि तौं गएलह, मेटए न मोनक आहि।
कहै बताहि, केओ मदमातलि, केओ कहए घताहि॥'

पृष्ठ १२०—

नींरांत = निरंत; निश्चित होना; भरोसा होना। थेई = हुई। सांच = सचमुच। सामलो = साँवलिया। पड़ाऊँ = गढ़ाऊँ; बनवाऊँ; चुड़लो = चुरला; चूड़ी। सिद = सिद्ध; चतुर। सोनी = सोनार।

गैना=गहना। कांचू=कंचुकी; चोली। हवे = अब। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी अपनी प्रेमिकाके अंग-अंगमें गिरधारीको रमते पाते हैं—

"लालके रंग रंगी तू प्यारी।

याही ते तन धारत मिसकै, सदा कुसुम्भी सारी।

लाल अधर कर पद सब तेरे, लाल तिलक सिर धारी॥

नैनन हूँ में डोरनके मिस झलकत लाल बिहारी।

तनमें रही नहीं सुध तनकी, नखसिख तू गिरधारी।

हरीचंद जग विदित भई यह प्रेम प्रतीत तिहारी॥"

गिरिधर···ढोल=नीचेके पद्यके अन्तिम चरणका भाव भी यही है। मिलाइये:—

"ठान ठनी हमरी अँखियाँ, तुम्हरी अँखियाँ कबौं ठानत जू?
बास कियो हमरो उर मांहि, कबौं हमरी सुधि आनत जू?
लागि लगी तुमसों हमरी, तुमहूँ कबहूं अनुमानत जू?
मेरो भई तुमहूँ कहि देहु, तुम्हारी हूँ हौं सबै जानत जू।"

पृष्ठ १२१—

छन्दकी प्रथम दो पंक्तियोंको छोड़कर शेष पंक्तियाँ दुहराई हुई हैं।

घायल फिरूँ······सोई=

"पंथ प्रेम को अटपटो, कोइ न जानत बीर।
के मन जानत आपनो; कै लागी जेहि पीर॥'

—दयाबाई

पृष्ठ १२२—

तारे·····त्यूँ=

"जौ लौं जीवैं तौ लौं हरि भजु रे मन और बात सब बादि,
दिवस चारिको हला भला तू कहां लेइगो लादि।
—स्वामी हरिदास

अन्तरमांथी=अन्तर्यामी। पाणी=पानीको। अमुलख= बहुमूल्य; अमूल्य; बेशकीमती।

जल जमुना···चरण तुमरे पड़ी=

"हौं तो या मग निकसी अचानक,
कान्ह कुंवर ठाढ़े अपनी पौर।
दृष्टि सों री दृष्टि मिली, रोम रोम शीतल भई,
तन में उठती किधौं काम-रौर।"
—सूरदास मदनमोहन

बीजुँ=दोनो। झेवर=जवाहिर। कथीर=कंथा; मेखला; गूदड़ी।

"गहो मन सब रसको रस-सार।
लोक वेद कुल कर भै तजिए, भजिए नित्य विहार॥
गृह कामिनी कंचन धन त्यागो, सुतिरौ स्याम उदार।
कहि हरिदास रीति संतन की, गादी को अधिकार॥"
—स्वामी हरिदास

पृष्ठ १२३—

मुखडानी=मुखको। माया=मेरे। जोयुँ=देखूँ। तास=उसका।

सर्व जग पेयु' खार=सम्पूर्ण संसार खारा है। तारी=तुम्हारी। ह्वेहूँ=हुई हूँ।

"आस लगैं वासा मिले, जैसी जाकी आस।
इक आसा जगबास है, इक आसा हरि पास॥"
—केशवदास

पृष्ठ १२४—

इत···सगरी=मथुरासे मर्त्यलोक; गोकुलसे अमरलोक और जमुनासे मायाका भान होता है। जीवका परमात्ममिलन माया ही नहीं होने देती। जो मायामें फँस जाता है उसका उबरना कठिन है। चौरासी लाख योनियोंमें भरमता रह जाता है।

तुम बिन···शरणागत तोरी=मीराँ आत्मसमर्पण कर चुकी; वह अशरणशरणकी शरणमें अपनेको पहुँचा चुकी; सबसे नाता तोड़ चुकी है। किन्तु उसके प्रियतम उसके इस त्यागका भी यथार्थ मूल्य अब तक नहीं कूत सके हैं, उनका ध्यान कभी भी दूसरी ओर है। मीराँ इसलिये बार-बार प्रतिज्ञाका स्मरण दिलाती है।

भई हौं···फाँसुरी=मिलाइये:—

"कौन ठगौरी भरी हरि आजु,
बजाई है बाँसुरिया रस-भीनी।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं तबहीं;
कुल-लाज विदा करि दीनी॥
घूम घरी-घरी नन्दके द्वार,
नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।

या ब्रजमंडलमें रसखानि,
सुकौन भट्टू, जो लट्टू नहिं किनी ॥"
—रसखानि

पृष्ठ १२५—

उपेक्ष्यभाव योगियोंकी निजी निधि है। आसक्ति और विरक्ति दोनोंसे परे उस समस्थितिको प्राप्त करना साधनाकी उच्चतम निसानी है। दयाबाईने लिखा है:—

"जगत सनेही जीव है, राम सनेही साध।
तन मन धन तजि हरि भजैं, जिनका मता अगाध ॥"

संसारसे जिसकी जितनी ही ममता है वह उतना ही माया-मोहके तिमिर-जालमें फँसा है। जहाँ दृश्य जगत्का अन्त है वहीं से अदृश्य-जगत्का आरम्भ होता है। जीवका ममत्व जो उसका माया-प्रदत्त विभव है, वह जब तक बना है तब तक जीव दृश्य-जगत् के परे अपनी भावना नहीं ले जा सकता। ज्यों-ज्यों उसका यह विभव हटता जाता है त्यों-त्यों वह अदृश्य-जगत या ब्रह्म-विभूति के निकट पहुँचता जाता है। इस प्रकार संसारसे उदासीन हो जाना साधकोंकी पहली किन्तु अभिनन्दनीय उपाधि है। मीराँ भी इसी की आकांक्षा करती और कहती है='किछु लेना न देना मगन रहना।'

नूर=प्रकाश। मथुरा···नूर=मायावी ऐश्वर्य बड़ा ही मोहक है। जो इस भ्रान्ति-मूलक विभवसे अपनेको वैभवशाली समझता है वह इससे छुटकारा क्योंकर पा सकता है। वह उसे जब तक

अपना समझता रहेगा, अपनेको पहचाननेकी ओर तबतक उन्मुख नहीं होगा; तबतक उसकी लघुताका परिचय ब्रह्मकी महत्तासे नहीं हो सकता। मनुष्य नदीके एक पार रहते हुए अपनेको दोनों पार का नहीं समझ सकता; यदि कहता है तो वह उसका पाखंड है; क्योंकि आत्मज्ञानसून्य जीव ब्रह्मका आडम्बर ही दिखा सकता है उसका सत्यस्वरूप नहीं। जो ब्रह्मविभूतिसे अपनेको विभूषित करना चाहता है या आत्मशुद्धि किंवा आत्मपरिचयके लिये ब्रह्मोन्मुख होना अभीप्स्य समझता है उसे दृश्य-जगत्, गोचर सुखोपभोग, नश्वर प्राणी, परिवर्तनशील प्रकृति आदि सबसे पराङ्मुख होना पड़ेगा। मीराँको भी—'साँवरेसे मिलना जरूर है', फिर वह 'मथुरा जीको मस्त गुवालिन' जिनके 'मुखपर बरसे नूर' से क्योंकर हिल-मिलकर रह सकती थी। वह क्रमशः कुटुंब-परिवार, लोक-मर्यादा वैभव-विलास, सुखोपभोगकी आसक्ति छोड़ती जा रही है, उसको तो अपने सांवलियाकी पड़ी है। इसीलिये; सयानी सखियोंसे पूछती है—'बता दे सखी सांवरियाको डेरो कितनी दूर।'

पृष्ट—१२५

सांवरा=साँवलिया। धनी=पति। कुण=कौन। विरियाँ=वेला। जमड़ा=यम। बेग पधारो······धनी है=

"आओ बैठो हँसो प्रिय, जातें बढ़े उछाह।
हम पागल प्रेमीनको, और चाहिये काह॥'
सुमिरत सुमिरत नाथको, कठिन सोकको सूल।
नींद भूख दोहूं गई, अजहूं सालत हूल॥' सत्यनाराण

पृष्ठ १२६—

जदही=जभी। सरीसा=सदृश। परमात्माका सच्चा भक्त वह है जो सांसारिक आडम्बरोंको पहचानता और उनमें ईश्वरीयताका जो अंश है उसका अभिनन्दन करता है। संसारको लोष्ट्रवत् और इष्टदेवको हीरक समझता है। कोकिलाकी तरह उसकी वाणी से माधुरी टपका करती और हंसकी तरह मानसमें रमता तथा सुमतिकी मोती चुग चुगकर अपनी साधनाकी सम्पत्ति बढ़ाता है। इतर जनोंकी कटूक्तियाँ उसे खलती नहीं, सदैव हरि-चरणो में चित्त दिये रहता है, संसारकी वाहवाही या छिः छिःकी परवाह नहीं करता।

कठे=कहाँ। पाठशुद्धि ख्यो=रयो=र्‌यो अठे=यहाँ रहो। काँई=क्यों। फीकोई=बुरा। सुमरां सूं=स्मरण करनेसे।

"नेह लगाय लुभाय लई···वधिकें छलसों ब्रजलाल बिचारियाँ।
वाह जू, प्रेम निबाहौ भलौ, बलिहारियाँ! लालन जू, बलहारियाँ॥

—हरिश्चन्द्र

बाण=बान; आदत। चेरी=दासी।

यह दोय नैन·········सावन की=

"यह' कह दो अब्रेबारांसे, अगर बरसे तो यों बरसे।
कि जैसे मेह बरसता है, हमारे दीदये तरसे।" —ग़ालिब
"जो तुम हँसनेमें हो कामिल तो मैं रोनेमें हूं मस्ताक़।
तुम्हें विजली गिराना, मुझको मेह बरसाना आता है।

समुन्दर कर दिया नाम उसका, नाहक सबने कहकह कर।
हुए थे कुछ जमा आँसू मेरी आँखोंसे बह बह कर॥"
"उत टपटप बूँदनि परै, इत टपकै नित नैन।
वह बरसै ऋतु पाइके, यह सरसै दिन रैन॥" —नटवर
लोचन नीर तटिन निरमाने
करए कलामुखि तथिहि सनाने॥"
—विद्यापति

पृष्ठ १२७—

रजनी=रात। गोपाल=गोकी रक्षा करनेवाले। त्यारे=तैयार। वात्सल्य भावका चित्रण किया है। प्रभातीके रूपमें जनसाधारण इसे गाते हैं।

'कमल मुख खोलो आजु पिआरे।
रजनी दिसि रवि टाढ़ आरती लियो छबि न्यारे॥"
❀ ❀ ❀ ❀
रजनी राज विदा मांगे वलि निरखो पलक उघारे।
—ललितकिशोर।

किन=किसने। जुलफों=जुल्फ, केशकी लटें। कारियां=काली। बाखरियाँ=कोठरी। वारियाँ=न्यौछावर। "अलकें अबै डारिगर फाँसी, लिये जात मन जोरा-जोरी।"

पृष्ठ १२८—

वारिज=कमल। बदन= मुख। "सखी हौं स्याम रंग रँगी। जोहनें···तनमें=देखि विकाय गई वह मूरति, सूरति मांहि पगी।

कासौं कहौं कौन पतिआवै, कौन करै बकवाद।
कैसे कै कहि जात गदाधर गूंगे को गुर स्वाद॥"
—गदाधर भट्ट

मुरली······चारूँ=
"मोरपंखा सिर ऊपर राखिहौं,
गुंज की माल गरै पहिरूँगी।
ओढ़ि पिताम्बर लै लकुटी बन,
गोधन ग्वारिन सँग फिरूँगी।"
—रसखानि

रैन=रहना। गुल=फूल। मरकट=बानर।

कोई···और औरहि बोले=मिलाइये :—

"जाति रही जमुना जलकौ, मिलि कान्ह गयो हम तौ सटकी।
छीनि लई दधि की मटकी, सुधि भूलि गई घट औघटकी॥
ठाढ़ि ठगी-सी रही कछु काल, पिछानी चली अटकी भटकी।
नन्दबबा घर आइ रही, न कही करनी कछु वा नटकी॥

बन्दे···मतभूल=भक्त भगवानके आगे सिर झुकाना मत भूल। दाड़िमरा=अनारका। जीव इस जगतमें अतिथिके समान है। यह समझते हुए भी वह भौतिक ऐश्वर्यमें इस प्रकार फँस जाता है कि अपने सत्य-स्वरूपको भूल जाता है। जीवकी यह भ्रान्ति उसे परमात्मशक्तिको—उसकी सत्ताको और उसकी स्वीकृतिको पहचानने नहीं देता। इसीलिये विविध माया-जालमें फँसा प्राणी अपने स्रष्टा, पोष्टा और नष्टाके प्रति उदासीन हो नहीं उसके विमुख हो

जाता है। भला, ऐसी अवस्थामें वह अपने नियन्ताके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन क्योंकर करे। प्राणी तब तक पार्थिव है जब तक वह परमात्मशक्तिकी शरणमें अपनेको नहीं समझता, जब समझ जाता है तब वह पार्थिव नहीं रहता, परमात्ममय हो जाता है।

थाने = तुम्हें। कांई = क्या। वाल्हा = प्रिय। जोवतें = देखते। सगपण = सम्बन्ध। म्हारो···विचारो

"मों मन गिरिधर-छवि पै अटक्यो।

❀ ❀ ❀ ❀

सजथ स्याम घन वरनलीन ह्वै फिर चित अनत न भटक्यो।
कृष्णदास किये प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यो॥"

—कृष्णदास

पृष्ठ १२६—

ऊबी = खड़ी।

"कम्पत हियो न हियो कम्पत हमारो कान्ह,
नेकुही हँसी अच्छी सीत मों ससन देहु।
अम्बर हरैया हरि अम्बर उजारो होत,
हेरिकै हँसे न कोई हँसे तो हँसन देहु॥
'देव' दुति देखिबे कौ लोयन मों लागी लखौ,
लोयन मों लाज लागी लोयन लसन देहु।
हमरो बसन देहु देखत हमारो कान्ह,
अजहूँ बसन देहु ब्रज मों बसन देहु॥"

—देव